चौथी दुनिया

हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

दिल्ली रविवार 24 मई 2009

मूल्य 20 रुपये

भीतर

3
संघ, भाजपा, आडवाणी, जसवंत सिंह और मुरली मनोहर जोशी

5
लुंज-पुंज गठबंधन से राष्ट्रीय सरकार बेहतर

7
क्षेत्रीय दलों के उभार के लिए कांग्रेस-भाजपा ही जिम्मेदार

ऐसे बनी मनमोहन की सरकार

- पर्दे के पीछे वी पी सिंह ने निभाई थी चाणक्य की भूमिका
- करुणानिधि के ख़त से कटे थे माया-मुलायम के पत्ते

इतिहास का अनकहा पन्ना

- प्रधानमंत्री किस पार्टी का हो, इस पर विवाद नहीं था
- रामविलास पासवान के मंत्री बनने की अंतर्कथा

संतोष भारतीय

यह इतिहास का वह पन्ना है, जिसके बारे में केवल चंद लोग जानते हैं. उनमें से दो अब इस दुनिया में नहीं हैं. इस पन्ने में 2004 में कांग्रेस की सरकार कैसे बनी, उसकी कहानी है. अब, जबकि पांच साल बाद 2009 में फिर से केंद्र में सरकार बनने जा रही है, तब यह आवश्यक हो जाता है कि उस पन्ने को सार्वजनिक कर दिया जाए, जिससे लोगों को पता चले कि उस पन्ने की सच्चाई क्या है.

घटना 8 मई 2004 की है. सोनिया गांधी के राजनैतिक सचिव अहमद पटेल डॉक्टर मंज़ूर आलम से मिलते हैं. डॉक्टर आलम समाज वैज्ञानिक हैं और इंस्टीट्यूट ऑफ ऑब्जेक्टिव स्टडीज़ के निदेशक हैं. अहमद पटेल उनसे कहते हैं कि चुनाव परिणाम आने वाले हैं और नए प्रधानमंत्री का चुनाव होना है. सोनिया गांधी के नाम पर कांग्रेस एकमत है लेकिन कांग्रेस को इस बात का डर है कि वे दल जो कांग्रेस के विरोध में हैं, कहीं कोई कमिटी न बना दें, जो यह तय करे कि गठबंधन कैसा होगा और उसका नेता कैसा होगा? कांग्रेस के भीतर यह बात चल रही थी कि भाजपा से जो दल अलग हैं, उन्हें लेकर एक गठबंधन बनाया जाए और किसी भी तरह भाजपा को सरकार न बनाने दी जाए. भाजपा अपनी ओर दलों को मिलाने की जी-तोड़ कोशिश कर रही है तथा उसने इस काम में जद-यू के जार्ज फर्नांडिस व शरद यादव को लगा दिया था.

डॉक्टर मंज़ूर आलम ने आठ मई को ही मुझसे बात की. उन्होंने कहा कि यदि सोनिया गांधी प्रधानमंत्री बनती हैं तो एक इतिहास बन जाएगा और देश के मुसलमानों को इससे बड़ी राहत मिलेगी, क्योंकि वे भाजपा की सरकार बनने की आशंका से बुरी तरह परेशान हैं. वैसे उन्होंने यह भी कहा कि भाजपा की सरकार सात साल चल चुकी है और अल्पसंख्यकों को गुजरात जैसी घटनाओं का डर है. अगर भाजपा की सरकार बनती है तो यह डर बढ़ेगा. उन दिनों हम सब गुजरात में घटी घटनाओं और अटल बिहारी वाजपेयी की शून्य बनती स्थिति तथा गुजरात में उनकी असहायता से परेशान थे. मैंने डॉक्टर आलम से कहा कि मैं श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह से बात करके देखता हूं. मुझे भरोसा नहीं था कि श्री वी पी सिंह इस स्थिति में पुनः पड़ने के लिए तैयार होंगे, क्योंकि वह बार-बार अपने को राजनीति से दूर ले जाने में लगे थे. आशा सिर्फ इतनी सी थी कि श्री वी पी सिंह ने दिल्ली की झुग्गी बस्तियों से कांग्रेस उम्मीदवारों को जिताने की अपील की थी और झुग्गीवासियों ने उनकी बात मानी थी. उन दिनों वी पी सिंह ग़रीबों के एकमात्र प्रतिनिधि और प्रवक्ता बन गए थे.

आठ और नौ मई को कम से कम 15 बार वी पी सिंह जी ने मुझे बुलाया और देश की हालत तथा नई सरकार के बनने के फायदे-नुकसान पर बात की. नौ की शाम तक उन्हें लगा कि यदि कांग्रेस की सरकार बनती है तो वह ग़रीबों, विशेषकर देश की झुग्गी बस्तियों के निवासी और किसानों के पक्ष में ज़्यादा काम करेगी. मैंने उनकी बात डॉक्टर मंजूर आलम को बताई. उन्होंने एक घंटे के बाद मुझे कहा कि सोनिया गांधी वादा करती हैं कि वह दोनों काम और ग़रीबों को लेकर जो भी सलाह वी पी सिंह देंगे, वह उसे लागू करेंगी. उन्हें सोनिया गांधी की ओर से पहले अहमद पटेल और बाद में खुद सोनिया गांधी ने इस बात का आश्वासन दिया. मैंने रात के नौ बजे वी पी सिंह जी को इसकी सूचना दे दी. वी पी सिंह ने एक घंटे तक इसकी गहराई और संभावना पर बात की. रात दस बजे वी पी सिंह जी ने कहा, चलिए सो जाइए, कल सुबह आइए तो बात करते हैं. अगले दिन उनकी डायलिसिस थी.

रात में डॉक्टर आलम और मेरी बात हुई, जिसमें मैंने कहा कि ऐसा न हो कि वी पी सिंह को बाद में निराशा मिले, तब डॉक्टर आलम ने कहा कि आप चलें और सोनिया गांधी से बात करें. रात 11.30 बजे अहमद पटेल और डॉक्टर आलम के साथ मैं दस, जनपथ गया और वहां विस्तार से सोनिया गांधी से बात की.

सोनिया गांधी इस बात पर परेशान थीं कि यदि देश के नेताओं ने कांग्रेस की सरकार बनाने में सहयोग नहीं दिया तो प्रतिकूलता खड़ी हो जाएगी, क्योंकि कांग्रेस उन्हें प्रधानमंत्री बनाना चाहती है और भाजपा उनके विदेशी मूल पर सवाल खड़ा कर रही है. उन्हें डर था कि यदि वी पी सिंह ने मदद नहीं की तो कोई ऐसा नहीं है जो ग़ैर-भाजपा विपक्ष को समझा सके और तैयार कर सके. सोनिया ने कहा कि वह वी पी सिंह से मिलना चाहती हैं. उन्होंने कहा कि वह सिंह से उनके घर पर मिलेंगी और अपनी बात कहेंगी. मैंने उन्हें अगले दिन वी पी सिंह की प्रतिक्रिया बताने की बात कही.

दरअसल, उस समय इतिहास बनने की प्रक्रिया शुरू हो रही थी. वी पी सिंह ने मतभेदों के कारण बोफोर्स को हथियार बना राजीव गांधी की सरकार गिरा दी थी. इस बात को कांग्रेस और सोनिया गांधी कभी भुला नहीं पाईं. उधर वी पी सिंह के मन में कहीं था कि वह क्यों न एक बार सरकार वापस राजीव गांधी के परिवार को लौटा दें. वी पी सिंह के मन में इंदिरा गांधी को लेकर बड़ा आदर था तथा अपने राजनीतिक जीवन का पूरा श्रेय वह इंदिरा गांधी को देते थे. कहते थे कि इंदिरा जी ने मुझे हमेशा दुलरा कर रखा और कभी किसी बात के लिए दबाव नहीं डाला. शायद इस सोच ने उन्हें फैसला लेने पर विवश किया.

अगले दिन यानी दस मई को वी पी सिंह की डायलिसिस थी. जब मैंने उन्हें सोनिया गांधी से हुई बात बताई तो वह सोनिया से मिलने को तैयार हो गए. उन्होंने मुझे बताया कि उन्होंने बहुत सोच-समझकर कांग्रेस की सरकार बनवाने का फैसला लिया है. उनके मन में राहुल और प्रियंका को लेकर अच्छी बातें थीं जो उन्होंने बताईं और कहा कि दोनों को कुछ किताबें पढ़नी चाहिए. वी पी सिंह ने मुझसे साथ चलने को कहा जबकि मैं जाना नहीं चाहता था, लेकिन उनका कहना था कि चलना ही है. जब वी पी सिंह सोनिया गांधी से मिलने दस जनपथ पहुंचे तो वहां अहमद पटेल और डॉक्टर मंज़ूर आलम मौजूद थे. सोनिया गांधी ने वी पी सिंह का स्वागत किया.

वी पी सिंह ने सबसे पहले मंज़ूर आलम को इस बात के लिए धन्यवाद दिया कि उनकी कोशिशों से मुसलमान भाजपा के ख़िलाफ़ कांग्रेस के साथ आए. शुरू के दस मिनट अहमद पटेल, डॉक्टर आलम और मैं बातचीत में शामिल थे. इस बातचीत में वी पी सिंह और सोनिया गांधी के बीच एक संपर्क सूत्र तय हुआ जो दोनों के सीधे संपर्क में रहेगा और फोन से बातचीत नहीं करेगा. दरअसल, कांग्रेस को डर था कि उनके सभी लोगों के फोन सुने जा रहे हैं. अहमद पटेल, डॉक्टर आलम और मैं दस मिनट बाद बाहर आ गए तथा वी पी सिंह जी और सोनिया गांधी कमरे में 45 मिनट तक अकेले बातचीत करते रहे.

उस दिन वी पी सिंह ने डायलिसिस जल्दी करा ली और वह डायलिसिस से सीधे मुझे लेकर दस जनपथ गए थे. वक्त करीब छह बजे का रहा होगा. गर्मी की शाम थी और माहौल भी गरम था. जब वहां से निकले तो हल्की आंधी आई थी. घर पहुंचते ही वी पी सिंह ने कहा कि उनकी बात सुरजीत, ज्योति बसु और करुणानिधि से हो चुकी है तथा जब उन लोगों ने वी पी सिंह से उनकी राय के बारे में पूछा तो उन्होंने सब को अपनी इच्छा बता दी थी. हुआ यह था कि रात में जैसे ही वी पी सिंह ने फैसला किया तो उन्होंने बाक़ी तीनों से बिल्कुल सुबह बात कर ली. तीनों जल्दी उठने वाले थे और आपस में न केवल दोस्त थे, बल्कि राजनीति में वी पी सिंह की समझ के कायल भी थे और अक्सर वी पी सिंह की राय पर फैसले भी लेते थे. वी पी सिंह ने बताया कि सोनिया गांधी ने उनसे नई सरकार बनवाने में वामपंथियों और करुणानिधि को तैयार करने का अनुरोध किया है. मुझसे वी पी सिंह ने साफ कहा कि यह ख़बर आगे नहीं जानी है, क्योंकि उन्हें करुणानिधि से व्यक्तिगत बात करनी होगी. यह अलग बात है कि तीनों ने वी पी सिंह से वादा कर दिया था और वी पी सिंह ने खासा माहौल बना दिया था.

11 मई को जब वी पी सिंह ने सुबह-सुबह बुलाया तथा कहा कि वह सुरजीत के घर जाकर उनसे मिल आए हैं और उन्होंने देवेगौड़ा से भी बात कर ली है. उन्होंने राय दी कि सोनिया गांधी को सुरजीत व देवेगौड़ा से बात करनी चाहिए. दिन में वी पी सिंह ने पहले करुणानिधि से बात की तथा बाद में चंद्रशेखर जी से बातचीत की. शाम में उन्होंने मुझे चंद्रशेखर जी की राय जानने के लिए भेजा तथा कहा कि सोनिया गांधी से चंद्रशेखर जी की बातचीत जल्दी से जल्दी करानी चाहिए.

जब मैं चंद्रशेखर जी से मिला तो उन्होंने कहा कि विश्वनाथ जो कह रहे हैं वह कितना सही है, मैं नहीं जानता, पर उन्होंने कहा है तो मैं ज़रूर सोनिया गांधी से मिलूंगा. मैंने कहा कि सोनिया जी आपके यहां आएं तो. चंद्रशेखर जी ने मना करते हुए कहा कि वह खुद ही जाएंगे, पर पहले ज़रा सोचेंगे और वी पी से बात करेंगे. मैंने वी पी सिंह को चंद्रशेखर जी की राय आकर बता दी. वह कुछ सोचने लगे.

12 मई को सुबह दस बजकर बीस मिनट पर सोनिया जी से मैं मिला और उनको वी पी सिंह की राय बताई. उन्होंने देवेगौड़ा जी से कर्नाटक की स्थिति के कारण बात करने में थोड़ी हिचक दिखाई पर मेरे यह कहने पर कि देश की हालत देखते हुए बात करने में कोई दिक्कत नहीं होनी चाहिए, वह फोन करने और बात करने के लिए मान गईं. वी पी सिंह ने यह भी कहलवाया था कि देवेगौड़ा जी प्रधानमंत्री पद की दौड़ में नहीं हैं और उन्होंने न कांग्रेस को इंडोर्स किया है और न ही मुलायम सिंह को इंडोर्स किया है. मुलायम सिंह उस समय प्रधानमंत्री बनने के लिए कांग्रेस के अलावा सभी दलों से बात कर रहे थे. वी पी सिंह ने सोनिया गांधी को कहलवाया था कि मनमोहन सिंह की नीतियों से किसानों को फायदा नहीं मिला, इसलिए किसानों के इश्यूज को सार्ट आउट (किसानों की समस्याओं को हल) करना चाहिए, वरना देवेगौड़ा जी शायद समझौता न करें. हालांकि देवेगौड़ा जी ने वी पी सिंह से कहा कि वह जो भी फैसला करेंगे, देवेगौड़ा उसके साथ रहेंगे. वी पी सिंह से देवेगौड़ा ने सबसे खास बात यह बताई कि सिद्धरमैया को कर्नाटक में मुख्यमंत्री पद का प्रस्ताव भाजपा ने दिया है, इसलिए वह अपने सब विधायकों को दिल्ली बुला रहे हैं. मैंने सारी बातें सोनिया जी को बता दीं.

वी पी सिंह की राय थी कि कर्नाटक में किसी तटस्थ कांग्रेस नेता को जेडीएस से संपर्क पर लगाया जाए, कृष्णा को नहीं. कांग्रेस ने इस राय को नहीं माना और अपनी तरह से काम किया. परिणामस्वरूप उस समय भाजपा के सहयोग से देवेगौड़ा का बेटा कर्नाटक का मुख्यमंत्री बन गया और कृष्णा के नेतृत्व में हुए दूसरे चुनाव में कांग्रेस कर्नाटक में बुरी तरह हार गई और बीजेपी की सरकार बन गई.

वी पी सिंह ने यह भी कहा कि मायावती ने कहा है कि वह 13 मई को यानी अगले दिन उनसे संपर्क करेंगी. इसी दिन आंध्र प्रदेश के विधानसभा चुनाव के नतीजे आ रहे थे और राजशेखर रेड्डी का बयान आया था कि वह अकेले ही सरकार बनाएंगे, पर फैसला रिज़ल्ट के बाद होगा. इस पर वी पी सिंह ने राय दी कि इस बयान का टीआरएस पर ग़लत असर पड़ेगा और सभी शंकित हो जाएंगे और भाग जाएंगे.

दोपहर दो बजे मैं देवेगौड़ा जी से मिला. वह कांग्रेस के खासे आलोचक थे. वह पत्रकारों से आधा घंटा बात करते रहे. बाद में काफी कहने-समझाने और वी पी सिंह की इच्छा बताने के बाद वह सोनिया गांधी से बात करने के लिए तैयार हुए. दो बजे से सवा दो बजे का समय तय हुआ कि सोनिया जी उन्हें फोन करें और वह बात करेंगे. यहां से मैं चंद्रशेखर जी के यहां गया. वहां अहमद पटेल पहले से आ चुके थे. इधर-उधर की बात चल रही थी. मैंने बात छेड़ी और उन्हें सोनिया जी से मिलने पर तैयार किया. सोनिया जी चंद्रशेखर जी को चार बजे फोन कर अपने यहां आने के लिए आमंत्रित करने वाली थीं और शाम सात बजे चंद्रशेखर जी वी पी सिंह से मिलने और बात करने उनके घर जाने वाले थे. एक दिन पहले ही वी पी सिंह ने फोन पर चंद्रशेखर जी से कहा था कि वह उनके घर आएंगे, पर चंद्रशेखर जी ने कहा कि नहीं, वह ही वी पी सिंह जी के यहां आएंगे. इसीलिए सोनिया गांधी से मिलने का समय उन्होंने साढ़े सात से आठ बजे का तय किया. उधर सोनिया जी ने ठीक दो बजे देवेगौड़ा जी से बात की तथा चार बजे चंद्रशेखर जी को फोन कर आने के लिए आमंत्रित किया. सोनिया गांधी के फोन करने के कारण एक बड़ा विरोध न उपज पाया.

शाम सात बजे चंद्रशेखर जी वी पी सिंह के यहां गए. वहां पहले से ही प्रेस वाले इंतजार कर रहे थे. उन्हें पता चल गया था. वी पी सिंह ने पहले तो चंद्रशेखर जी से अयोध्या मसले पर बात की तथा उसके बाद राष्ट्रीय स्थिति पर बात हुई. सात बजकर बीस मिनट पर ए बी बर्धन और डी राजा वी पी सिंह से मिलने आए और बताया कि वे सुरजीत के यहां से आ रहे हैं. दोनों ने वी पी सिंह और चंद्रशेखर को बताया कि उन्होंने अपना मन बना लिया है कि कांग्रेस का समर्थन किया जाए. इसके बाद मुलायम सिंह के बारे में बात हुई क्योंकि उसी दिन मुलायम और अमर सिंह, सुरजीत से मिले थे.

चंद्रशेखर जी साढ़े सात बजे यह कहते हुए उठ खड़े हुए कि हमें देश की होने वाली प्रधानमंत्री से मिलने जाना है. मुझे उन्होंने हाथ पकड़ कर कार में बिठा लिया. अकबर रोड पर प्रेस की भीड़ थी, इसलिए विज्ञान भवन की ओर से दस जनपथ में दाखिल हुए. यहां दोनों नेताओं की पैंतीस मिनट बात हुई. चंद्रशेखर जी ने सोनिया जी से साफ कहा कि मैं विश्वनाथ के कहने से आप का पूरा समर्थन करता हूं. घर लौट कर चंद्रशेखर जी ने प्रेस से कह दिया कि उनको सोनिया के प्रधानमंत्री बनने पर कोई ऐतराज नहीं है. देर रात मैंने वी पी सिंह को बता दिया कि देवेगौड़ा से सोनिया जी की बातचीत और चंद्रशेखर जी से मुलाकात हो गई है.

एक खास बात मैंने रात ही में वी पी सिंह को और बताई. घर लौटते ही चंद्रशेखर जी मुझसे कहा कि-एक बात बता रहा हूं. कांग्रेस इस्तेमाल करती है और फिर फेंक देती है. ध्यान रखना और विश्वनाथ को मेरी तरफ से बता देना-इसके बाद रात ही में वी पी सिंह ने चंद्रशेखर जी से बात की और कहा कि-भाई साहब, हम अपना कर्तव्य करें और उनका कर्तव्य वे ही जानें-हालांकि बाद में दोनों ने अलग-अलग मौकों पर इस कथन को कई बार मुझे याद कराया.

13 मई को लोकसभा चुनावों के नतीजे आने वाले थे. सुबह सोनिया गांधी से अहमद पटेल, डॉक्टर मंज़ूर आलम और मैं मिले. हमारे बीच तमाम संभावनाओं पर बातचीत हुई. दो घंटे के भीतर ही ट्रेंड आने लगे. अचानक वी पी सिंह ने बुलाया और संदेश दिया कि तुरंत सोनिया जी से कहो कि -(1) पार्टी का लीडर चुनने का अधिकार किसी दूसरे को नहीं देना चाहिए

(शेष पृष्ठ 2 पर)

दिल्ली के बाबू

दिलीप चेरियन

मोहन के बाद कौन

राकेश मोहन के इस्तीफे के बाद अब भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) में चार की जगह सिर्फ दो डिप्टी-गवर्नर बचे रह गए हैं. वी. लीलाधर पिछले वर्ष दिसंबर में ही सेवानिवृत्त हो गए थे. सरकार ने अब तक उनके बदले किसी को नियुक्त नहीं किया है. अब राकेश मोहन के चले जाने के बाद नई नियुक्तियों की प्रक्रिया जल्द शुरू करने की ज़रूरत लगती है. नियुक्ति की होड़ में वित्त मंत्रालय के मुख्य आर्थिक सलाहकार अरविंद वीरमानी, प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार रघुराम राजन और आरबीआई में रह चुके पुणे विश्वविद्यालय के उप-कुलपति नरेंद्र जाधव सबसे तगड़े उम्मीदवार माने जा रहे हैं.

एक फसल नकली

साल भर से एक फर्जी वेबसाइट लोगों को सरकारी नौकरियां देने का वादा कर बेवकूफ बना रही थी. अब जाकर सरकार ने इस पर काबू पा लिया है. दरअसल राष्ट्रीय कृषि अनुसंधान केंद्र (सीएआरसी) नाम की संस्था कृषि मंत्रालय के तहत एक केंद्रीय एजेंसी होने का दावा करती थी. यह संस्था सरकारी नौकरियों के लिए साक्षात्कार भी आयोजित करती थी. इस तथाकथित केंद्र ने एक ऐसी वेबसाइट बना रखी थी जिस पर कृषि मंत्री शरद पवार और कृषि भवन की तस्वीरें थीं. इसका राज़ तब खुला, जब असली भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर) के बाबुओं को इसकी भनक लगी. अब आईसीएआर इन जालसाजों पर मुकदमे की तैयारी कर रही है.

सूचना आयोग में भी आचार संहिता

जजों, वकीलों और कंपनियों को अपने अधिकार क्षेत्र में लाने के बाद अब मुख्य सूचना आयोग ने अपने सदस्यों के लिए भी 16-सूत्रीय आचार संहिता जारी कर दी है. हालांकि अपने सदस्यों की संपत्ति का ब्योरा देने का दबाव झेल रहे आयोग की आचार संहिता में इस बात का कोई जिक्र नहीं है. आचार संहित में निष्पक्षता, उपहार लेने की मनाही, शेयर बाज़ार से दूर रहने और ग़ैर-सरकारी संस्थाओं से न जुड़ने जैसे निर्देश हैं. मुख्य सूचना आयुक्त वजाहत हबीबुल्लाह द्वारा तैयार यह आचार संहिता सदस्यों के लिए सलाह की शक्ल में होगी और इसे जल्द ही आयोग की बैठक में अंतिम रूप दे दिया जाएगा. हालांकि संपत्ति के मुद्दे पर आयोग से खार खाए जज इस पर तीखी प्रतिक्रिया कर सकते हैं.

साउथ ब्लॉक

अंजुम ए ज़ैदी

कौन बनेगा ऊर्जा सचिव

परंपरा के अनुसार नई सरकार के आने तक सभी नई नियुक्तियों पर ब्रेक लग गया है. ऊर्जा मंत्रालय में सचिव की नियुक्ति भी फिलहाल रोक दी गई है. उम्मीद जताई जा रही है कि राष्ट्रीय आपदा प्रबंधन, गृह मंत्रालय के विशेष सचिव हरिशंकर ब्रह्म इस पद को संभालेंगे. हरिशंकर ब्रह्म 1975 बैच के आंध्र कैडर के अधिकारी हैं. अगर उनकी नियुक्ति होती है तो जल संसाधन सचिव यू एन पंजियार का भार कम हो जाएगा. यू एन पंजियार पूर्व ऊर्जा सचिव वी एस संपत के चुनाव आयोग में चले जाने के बाद से इस पद का कामकाज देख रहे थे.

स्वास्थ्य विभाग को है इंतज़ार

सभी विभागों में नई नियुक्तियों के लिए चुनाव ख़त्म होने की राह देखी जा रही है. स्वास्थ्य मंत्रालय को भी उम्मीद है कि चुनाव के बाद उसे नया अतिरिक्त सचिव मिल जाएगा. फिलहाल इस पद के लिए राजस्थान के 1978 कैडर के आईएएस अधिकारी राजीव महर्षि की नियुक्ति पर प्रधानमंत्री कार्यालय ने ब्रेक लगा दिया है. इस पद पर इससे पहले जी सी चतुर्वेदी नियुक्त थे जो अब वित्त मंत्रालय में वित्तीय सेवाओं के प्रमुख के पद पर चले गए हैं.

कब मिलेगा सीबीडीटी को सदस्य

लगता है कि केंद्रीय प्रत्यक्ष कर बोर्ड को अपने सदस्य, अनुसंधान के लिए अभी और इंतज़ार करना पड़ेगा. यह पद फरवरी 2009 से खाली है. हालांकि इसी दौरान सदस्यों के तौर पर सी एस कल्हों और सुधीर चंद्रा की नियुक्ति हुई है और वर्तमान सदस्य सरोज बाला की सेवानिवृति के बाद एक और सदस्य की नियुक्त होनी है. कहा जा रहा है कि प्रकाश चंद्रा इनकी जगह लेंगे. हालांकि इन नियुक्तिओं के बीच महत्वपूर्ण नियुक्ति का टलते रहना समझ में नहीं आ रहा.

ऐसे बनी मनमोहन की सरकार

पेज एक का शेष

और किसी दबाव में नहीं आना चाहिए. (2) सरकार सोनिया के नेतृत्व में बने, किसी दूसरे को नहीं बैठाना है. (3)मुलायम व मायावती को बराबर मानना चाहिए. मुलायम को साथ लेते हैं तो मायावती को भी लेना चाहिए. (4) मुलायम कभी कांग्रेस का हित नहीं चाहेंगे. (5) उत्तर प्रदेश में कांग्रेस को बढ़ना है तो मुलायम का साथ छोड़ना पड़ेगा. (6) अभी लेना है तो दोनों को लें, नहीं तो दोनों को छोड़ें, पर एक को अगर लेना ही पड़े तो मायावती को लें. (7) इस मसले पर लेफ्ट का दबाव झेलना पड़ेगा. (8) मायावती को छोड़ना नहीं चाहिए नहीं तो दलित भाजपाई हो जाएगा और भाजपा यूपी में ताक़तवर हो जाएगी. (9) डिप्टी पीएम कोई नहीं होना चाहिए, मुलायम को तो बिल्कुल नहीं, क्योंकि वह तो दूसरा पावर सेंटर हो जाते हैं. (10) रक्षा, ऊर्जा सूचना और तकनीक मुलायम चाहेंगे, पर उनको यह सब देना नहीं चाहिए और (11) चुनाव से पहले मुलायम से अलग होना होगा, अगर कांग्रेस को यूपी में जीतना है तो.

वी पी सिंह के सुझाव तत्काल सोनिया जी के पास जाने थे. अहमद पटेल और मेरी मुलाकात हुई. उन्हें सुझाव लिखवाए. वह तत्काल सोनिया जी के पास गए और उन्हें वी पी सिंह के सुझावों के बारे में बताया. मुझे एक घंटे के भीतर उन्होंने कहा कि सौ प्रतिशत इन्हीं सुझावों के आधार पर काम होगा. इसी दिन लोकसभा के परिणाम आ गए. इसमें कांग्रेस को 145 और भाजपा को 138 सीटें मिलीं. दोनों दलों की ओर से सरकार बनाने की दौड़ शुरू हो गई.

14 मई को दिन भर सोनिया गांधी अपने साथियों से विचार-विमर्श करती रहीं. इधर वी पी सिंह लेफ्ट और करुणानिधि से बात करते रहे. ज्योति बसु ने 15 मई की शाम दिल्ली आकर वी पी सिंह से मिलना चाहा, तो वी पी सिंह ने बंगभवन जाकर उनसे मिलना तय किया. 14 तारीख़ को वी पी सिंह ने एक प्रेस कांफ्रेंस की, जिसमें उन्होंने सोनिया गांधी को प्रधानमंत्री बनाने की स्पष्ट मांग की तथा लेफ्ट व करुणानिधि से अपील की कि वे सोनिया गांधी का समर्थन करें. प्रेस कांफ्रेंस में उन्होंने यह भी कहा कि आर्थिक कार्यक्रम बनाया जा सकता है. सभी सरकार में शामिल हों, इसकी कोशिश भी वी पी सिंह ने शुरू कर दी.

1) 15 मई को वी पी सिंह ने सोनिया गांधी को संदेश भिजवाया कि मायावती ने उनको आश्वस्त कर दिया है कि वह कांग्रेस के साथ हैं.

2) इसके साथ ही उन्होंने कहा कि ज्योति बाबू शाम को आ रहे हैं और उनके आते ही वी पी सिंह की मुलाकात होगी.

3) सुरजीत, सीताराम येचुरी व प्रकाश करात से वी पी सिंह की बात हुई कि यदि वे सरकार में शामिल होंगे तो राजनीतिक यथार्थ का प्रतिनिधित्व करेंगे.

4) भाजपा को साफ संकेत जाना चाहिए कि कांग्रेस में कहीं कोई मतभेद नहीं है.

5) उनका फैसला डीएमके को प्रभावित करेगा.

6) लेफ्ट को राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता में भागीदारी करनी चाहिए, इस पर सुरजीत, येचुरी, करात और बर्धन तैयार हैं पर उन्हें दक्षिण के लोगों पर भरोसा नहीं है.

7) करुणानिधि कैबिनेट में बाद में शामिल होंगे.

8) करुणानिधि उनसे अगले दिन यानी 16 मई को मिलेंगे.

वी पी सिंह ने बताया कि उनसे सुरजीत ने कहा कि उन्होंने मुलायम सिंह से कहा है कि तुम सीएम रहो, दिल्ली मत आओ, केवल एक-दो मंत्री पद ले लो, वरना आइसोलेट हो जाओगे. उड़ीसा और आंध्र की राजनैतिक स्थिति पर भी कुछ करने का तय हुआ. रात में अचानक ज्योति बसु से मिलने के बाद वी पी सिंह सोनिया गांधी से मिलना चाहते थे. मुलाकात फौरन निश्चित हो गई. इस मुलाकात में वी पी सिंह ने सोनिया गांधी को बताया कि उनकी ज्योति बसु से क्या बात हुई. सोनिया गांधी ने वी पी सिंह को अधिकृत किया कि जैसा ठीक समझें वह ज्योति बसु से कहें, और जो वह कहेंगे उसी का पालन होगा.

16 मई की सुबह वी पी सिंह पुनः ज्योति बसु से मिले और उन्हें सोनिया गांधी से हुई बात बताई. इसके बाद वह सीधे डायलिसिस पर चले गए. अब यह दिन यानी सोलह मई बहुत महत्वपूर्ण था. करुणानिधि चेन्नई से दिल्ली आए और सीधे वी पी सिंह से मिले. वी पी सिंह ने उनसे सरकार में शामिल होने को कहा, पर उन्होंने कहा कि वह बाद में शामिल होंगे. दरअसल करुणानिधि से अटल बिहारी वाजपेयी की बात हो चुकी थी और करुणानिधि अटल बिहारी वाजपेयी को समर्थन देने का मन बना चुके थे. सोनिया गांधी से शाम को करुणानिधि की मुलाकात हुई, जिसमें करुणानिधि ने साफ कमिटमेंट नहीं किया. वह वहां से सीधे वी पी सिंह के पास आए. उन्होंने अपनी शंकाएं, अपनी सोच वी पी सिंह को बताईं. वी पी सिंह ने करुणानिधि से सीधे कहा कि उन्हें कांग्रेस का समर्थन करना चाहिए और सरकार में शामिल होना चाहिए. करुणानिधि ने वी पी सिंह से पूछा कि वह अटल जी से क्या कहें, क्योंकि वह उन्हें समर्थन देने का वायदा कर चुके हैं. करुणानिधि ने वी पी सिंह को सोचकर बताने का वायदा किया.

इस बीच दोनों चाय पी रहे थे. दो मिनट की ख़ामोशी रही. अब वी पी सिंह ने करुणानिधि से कहा कि मैं एक कागज़ पर कांग्रेस और सोनिया गांधी के सपोर्ट का ख़त लिख रहा हूं और नीचे करुणानिधि का दस्तख़त कर रहा हूं. आप चाहें तो प्रेस बुलाकर कह दें कि दस्तख़त मेरे नहीं, वी पी सिंह ने किए हैं. करुणानिधि ने वी पी सिंह का हाथ पकड़ लिया और कहा कि आप क्या कह रहे हैं. आप जैसा कहेंगे, मैं करूंगा. फैसला हो चुका था. इतिहास ने फैसला सुना दिया. आधे घंटे के अंदर सोनिया गांधी के पास करुणानिधि के समर्थन का ख़त पहुंच गया.

फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

यही वह ख़त था, जिसने केंद्र में कांग्रेस की सरकार बनवा दी, क्योंकि अगर करुणानिधि न मानते तो सोनिया गांधी को मुलायम सिंह या मायावती में से किसी एक का या दोनों का समर्थन लेना पड़ता. उस स्थिति में आपस में टकराव वैसा ही होता जैसा बाद में, पिछले पांच सालों में हुआ. उस दिन वी पी सिंह की डायलिसिस भी थी, उन्होंने अस्पताल से दिन में फोन कर के सोनिया गांधी को बता दिया था कि उनकी ज्योति बसु से क्या बात हुई थी. करुणानिधि के समर्थन की बात उन्होंने तुरंत सोनिया गांधी को बताने के लिए कहा. मैंने अहमद पटेल को जानकारी दे दी.

17 तारीख़ तक कांग्रेस ने राष्ट्रीय जनता दल, डीएमके, एनसीपी, केरल कांग्रेस, पीएमके, टीआरएस, झारखंड मुक्ति मोर्चा, एमडीएमके, एलजेपी, जम्मू-कश्मीर की पीपुल्स डेमोक्रेटिक पार्टी, रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया और मुस्लिम लीग को मिलाकर अपना मोर्चा बना लिया. समाजवादी पार्टी ने उसे बिना शर्त समर्थन का ख़त दे दिया. ये सब मिलाकर दो सौ पचहत्तर हो गए. वामपंथियों ने भी समर्थन घोषित कर दिया, उनके सांसदों की संख्या साठ थी. 17 मई की रात कांग्रेस ने घोषित किया कि श्रीमती सोनिया गांधी प्रधानमंत्री बनने को तैयार हो गई हैं और वह 18 मई को यानी अगले दिन राष्ट्रपति कलाम से मिलेंगीं.

अब 18 मई को श्रीमती सोनिया गांधी अपने साथ समर्थकों का ख़त लेकर राष्ट्रपति कलाम से दिन में बारह बजे मिलीं और बाहर आने पर पत्रकारों से कहा कि वह डॉ. कलाम से 19 मई को फिर मिलेंगीं. 19 मई को दिन में दो बजे अचानक दस जनपथ से फोन आया कि श्रीमती सोनिया गांधी माखनलाल फोतेदार और नटवर सिंह को वी पी सिंह से मिलने भेज रही हैं. वी पी सिंह का फोन आया कि मैं दस मिनटों में पहुंचूं. मैं नज़दीक ही था, पहुंच गया. वी पी सिंह ने बात बताई और अंदाज़ा बताया कि लगता है कांग्रेस के लोगों ने सोनिया गांधी को डरा दिया है. उनका अनुमान सही साबित हुआ. दो पैंतालीस पर माखनलाल फोतेदार नटवर सिंह के साथ वी पी सिंह से मिलने पहुंचे. आते ही दोनों ने चाय पी. चाय पीने के बीच में फोतेदार जी ने जेब से एक कागज़ निकाला और वी पी सिंह को दिखाया. वी पी सिंह ने देखा और मुस्कुराए और कहा कि मैं तो चाहता था कि वह ही बनें पर ठीक है, जैसा वे सही समझें. दोनों नमस्कार कर उठ गए. उनके जाते ही वी पी सिंह ने कहा कि शाम को सेंट्रल हॉल की मीटिंग में सोनिया गांधी मनमोहन सिंह का नाम घोषित करने वाली हैं. मुझे उन्होंने इस ख़बर को अपने तक रखने के लिए कहा. यही हुआ, शाम को कांग्रेस पार्टी ने मनमोहन सिंह को अपना नेता चुन लिया. 19 की शाम सोनिया गांधी फिर राष्ट्रपति से मिलीं और इस बार उनके साथ मनमोहन सिंह थे.

14 मई को एक घटना और हुई. गोविंदाचार्य को लगा कि सोनिया गांधी के विदेशी मूल के मुद्दे को इतना तेज़ कर दिया जाए कि लोग धरना-प्रदर्शन करने लग जाएं. उन्होंने एक वरिष्ठ पत्रकार और संघ के लोगों के साथ योजना बनानी शुरू की और दूसरी ओर उमा भारती को चंद्रशेखर जी के पास भेजा कि वह सेनिया गांधी के ख़िलाफ़ बयान दे दें और कहें कि विदेशी मूल की महिला भारत की प्रधानमंत्री नहीं बन सकती. उमा भारती को चंद्रशेखर जी ने टाल कर लौटा दिया. चौदह की ही रात को आडवाणी जी चंद्रशेखर जी के पास पहुंचे और उन्हें साथ आने के लिए अनुरोध किया. चंद्रशेखर जी ने कहा कि मैंने सोच-समझ कर फैसला किया है और मैं विश्वनाथ को वचन दे चुका हूं, मैं उन्हीं के साथ रहूंगा. देर रात चंद्रशेखर जी ने बुलाया और सारी बातें बताईं और कहा कि विश्वनाथ और सोनिया गांधी को बता दो. अब आई 22 मई की तारीख़. दिन था शनिवार, उस दिन शपथ होनी थी. अचानक अहमद पटेल का फोन आया कि वह तुरंत वी पी सिंह से मिलना चाहते हैं और मैं भी वहीं रहूं. वह मिलने आए और उन्होंने वी पी सिंह से कहा कि रामविलास पासवान शपथ नहीं ले रहे हैं, क्योंकि लालू यादव ने रेल मंत्रालय के लिए ज़िद कर दी है. उन्होंने अनुरोध किया कि वी पी सिंह चलें और पासवान को समझाएं. वी पी सिंह तैयार हो गए और अहमद पटेल की गाड़ी में बैठ गए. मैं बाहर खड़ा था और पत्रकार के नाते जाना नहीं चाहता था, पर वी पी सिंह ने थोड़ा कड़ा होकर कहा कि बैठिए. दोनों पासवान के यहां गए. रामविलास पासवान का लॉन उनके समर्थकों से भरा पड़ा था. अहमद पटेल और वी पी सिंह का रामविलास ने उठ कर स्वागत किया, लेकिन मंत्री बनने से इंकार कर दिया.

अहमद पटेल चुप बैठे थे. वी पी सिंह ने कहा कि आपको मंत्री बनना है, पर उन्होंने विनम्रता से कहा कि बाद में देखेंगे. आधे घंटे तक बात हुई लेकिन पासवान नहीं माने. अहमद पटेल सीधे सोनिया गांधी से हर पांच मिनट के बाद बातें कर रहे थे. रामविलास पासवान के घर के अंदर उनकी पत्नी के पास कुछ लोग बैठे थे जो उनके मंत्री बनने के विरोधी थे और जो चाहते थे कि रेल मंत्रालय मिले, तभी वह शपथ लें. पासवान उठ कर अंदर चले गए और वापस नहीं आए.

इस बीच वी पी सिंह ने कहा कि पासवान को दो मंत्रालय दीजिए. अहमद पटेल ने सोनिया जी से बात की, वह तैयार थीं. पर पासवान स्वास्थ्य मंत्रालय चाहते थे, पहले तो सोनिया गांधी ने हां कर दी, लेकिन दो मिनट बाद उनका फोन आया कि उसे तो उन्होंने पीएमके को देने का वायदा कर दिया है. वी पी सिंह ने कहा कि स्टील और रसायन व उर्वरक दे दीजिए. अहमद पटेल तुरंत उठे और सोनिया गांधी के पास चले गए. वी पी सिंह ने मुझे कहा कि रामविलास जी को क्या हो गया है, उन्हें राजनीति समझनी चाहिए. मैं आया हूं, बैठा हूं और वह घर के अंदर हैं, जाइए और बुलाकर लाइए. मैं अंदर गया. रामविलास जी का हाथ पकड़ कर एक कोने में ले गया और उन्हें वी पी सिंह की व्यथा बताई. वह मेरे साथ ड्राइंग रूम में आए. वी पी सिंह ने उनसे कहा कि वह उन्हें लेकर ही जाएंगे, नहीं तो बैठे हैं. इधर वी पी सिंह ने शपथ ग्रहण में जाने के लिए अपनी गाड़ी घर भेज दी ताकि वह उनकी पत्नी को लेकर आ सके. वी पी सिंह अपने कपड़े भी नहीं बदल सके.

रामविलास पासवान घर के अंदर गए और अपनी पत्नी और वहां बैठे लोगों को फैसला सुना दिया कि वी पी सिंह जी आए हैं, कह रहे हैं, मैं उन्हें अनदेखा नहीं कर सकता, मैं शपथ लेने चल रहा हूं. दस मिनट के भीतर पासवान कपड़े पहन वी पी सिंह के पास आ गए. तब तक वी पी सिंह की गाड़ी उनकी पत्नी को लेकर आ गई थी. उसी गाड़ी में वी पी सिंह ने पासवान को बैठाया और राष्ट्रपति भवन चल दिए.

इतिहास ने पांच साल की भूमिका लिख दी थी और अब फिर वही हालत है. नई सरकार बननी है, पर कुछ भी निश्चित नहीं है. हां, इन पांच सालों में चंद्रशेखर जी और वी पी सिंह जब तक जीवित रहे, उन्हें इस बात का दुख रहा कि कांग्रेस ने ग़रीबों के लिए जितना करना चाहिए था, नहीं किया.

इतिहास का यह अनकहा, अनछुआ टुकड़ा अब आपके सामने है. वी पी सिंह और चंद्रशेखर अब हमारे बीच नहीं हैं, लेकिन सोनिया गांधी, अहमद पटेल और डॉ. मंज़ूर आलम हमारे बीच हैं. जो बयान पांच साल पहले नहीं आए वे अब आ रहे हैं. जैसे प्रधानमंत्री जिसे हम चाहेंगे उसे बनाएंगे, प्रधानमंत्री तीसरे मोर्चे का बनेगा, प्रधानमंत्री कांग्रेस से बाहर का होगा, मनमोहन सिंह को हम नहीं बनने देंगे, आदि आदि.

पांच साल पहले अकेले वी पी सिंह ने आगे बढ़कर कांग्रेस की मुश्किलें आसान कर दीं थीं. इस बार कौन आसान करेगा, यह देखना दिलचस्प होगा.

editor.chauthiduniya@gmail.com

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

आर एन आई रजि.न.45843/86

वर्ष 23 अंक 10, 24 मई 2009

प्रधान संपादक
संतोष भारतीय

मैसर्स अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के लिए मुद्रक व प्रकाशक रामपाल सिंह भदौरिया द्वारा जागरण प्रकाशन लिमिटेड डी 210-211 सेक्टर 63, नोएडा उत्तर प्रदेश से मुद्रित एवं के - 2, गैनन, चौधरी बिल्डिंग, कनाट प्लेस, नई दिल्ली 110001 से प्रकाशित

संपादकीय कार्यालय
के -2, गैनन
चौधरी बिल्डिंग
कनाट प्लेस
नई दिल्ली 110001

फोन न.
संपादकीय +91 011 47149999
विज्ञापन +91 011 47149916
प्रसार +91 011 47149905
फैक्स न. +91 011 47149906

समस्त कानूनी विवादों का क्षेत्राधिकार दिल्ली न्यायालयों के अधीन होगा.

संघ, भाजपा, आडवाणी, जसवंत सिंह और मुरली मनोहर जोशी

यह रिपोर्ट पंद्रह तारीख़ को लिखी जा रही है और सोलह की शाम को लोकसभा चुनावों के नतीजे आने वाले हैं, इसलिए पाठकों को यह रिपोर्ट ज़रा ध्यान से पढ़नी होगी.

कहानी आडवाणी जी की पाकिस्तान यात्रा से शुरू होती है, जहां उन्होंने कायदे आज़म जिन्ना को धर्मनिरपेक्ष बताया और उनकी मज़ार पर रखी पुस्तिका में इसे लिखा भी. संघ और भाजपा में तूफान आ गया और लगा कि आडवाणी जी भाजपा छोड़ देंगे या उन्हें निकाल दिया जाएगा. बयान आते रहे और आडवाणी जी ख़ामोशी से उन्हें सहते रहे. आडवाणी जी का साल से ज़्यादा वक्त ख़ामोश एकांतवास में गुज़र गया, उस पार्टी की बेरूखी में बीत गया, जिसे उन्होंने अपने ख़ून-पसीने से सींचा था. हालांकि उन पर बयान देने वाले संघ के दूसरे नेता भी यही कह रहे थे कि उन्होंने भी तो अपने ख़ून-पसीने से पार्टी को सींचा है.

इसी दौर में भाजपा के कुछ नेताओं ने कहा कि आडवाणी जी ने जिन्ना साहब को धर्मनिरपेक्ष तो अब कहा है, पर 1977 में उन्होंने एक और बड़ी चूक कर दी थी और वह चूक थी इंदिरा गांधी को पुनः सत्ता में आने का रास्ता बनाने में सहयोग देना.

उन दिनों आडवाणी जी सूचना और प्रसारण मंत्री थे और इंदिरा गांधी सत्ता में वापसी की कोशिश कर रही थीं. उन दिनों केवल दूरदर्शन और रेडियो था, जिसका नियंत्रण सूचना और प्रसारण मंत्रालय के पास था. रेडियो और दूरदर्शन जमकर इंदिरा गांधी की कोशिशों का प्रचार करते थे. धीरे-धीरे देश में जनता पार्टी के ख़िलाफ़ और इंदिरा जी के पक्ष में माहौल बन गया. सन अस्सी में मध्यावधि चुनाव हुए और इंदिरा जी सत्ता में वापस आ गईं.

एक साल से ज़्यादा के वनवास के बाद आडवाणी जी और संघ के नेताओं में बातचीत शुरू हुई. संघ एक निश्चित योजना पर काम करना चाहता था कि कैसे 2009 के चुनावों में भाजपा पुनः सत्ता में आए. संघ का बनाया संगठन विश्व हिंदू परिषद भाजपा के ख़िलाफ़ थी, क्योंकि उसे लग रहा था कि भाजपा अति उदारवादी रास्ते पर चल पड़ी है और वह सत्ता प्राप्ति के लिए कुछ भी और किसी से भी समझौता कर लेगी. जब संघ और विहिप में बात हुई तो सबसे पहले भाजपा के राजनीतिक चरित्र पर बात हुई और कौन व्यक्ति प्रधानमंत्री हो सकता है, इस पर विचार हुआ. केवल दो नाम उस समय संघ के सामने थे-पहला लालकृष्ण आडवाणी का और दूसरा मुरली मनोहर जोशी का. मुरली मनोहर जोशी संघ के ज़्यादा करीब थे, पर संघ को लगा कि अटल जी की बीमारी को देखते हुए यदि आडवाणी जी का नाम तय न किया गया तो आडवाणी जी भाजपा को ज़्यादा नुकसान पहुंचा सकते हैं. संघ का यह भी आकलन था कि देश का उद्योग जगत और बड़े पैसे वाले आडवाणी को ज़्यादा पसंद करेंगे, मुरली मनोहर जोशी को कम. अशोक सिंघल और विहिप आडवाणी जी के ख़िलाफ़ थी. उन्होंने संघ से कहा कि यदि आडवाणी जी राममंदिर बनवाने, गोहत्या रोकने का क़ानून बनाने और सेतु समुद्रम योजना को लागू करने का वचन दें तभी वे उनका समर्थन करेंगे और साथ देंगे.

सुदर्शन जी के नेतृत्व में मोहन भागवत सहित संघ के शीर्षस्थ नेताओं और आडवाणी जी के बीच कई दौर की बातचीत हुई. आडवाणी जी ने कहा कि वह इन सब बातों को मानेंगे पर संघ और भाजपा को अभी यानी चुनाव से करीब डेढ़ साल पहले भावी प्रधानमंत्री, या भाजपा के प्रधानमंत्री की घोषणा करनी होगी. इस पर संघ ने आडवाणी जी से एक और वचन लिया कि पूर्ण बहुमत आए या न आए, यदि उनके नेतृत्व में सरकार बनती है तो संघ के मुद्दों से भाजपा भटकेगी नहीं और सहयोगियों पर, यदि किसी सहयोगी की ज़रूरत पड़ी तो, वह उन्हें भी उन मुद्दों पर साथ देने या उन्हें चुप रहने के लिए तैयार कर लेगी. संघ के मुद्दों में ऊपर के तीन मुद्दों के साथ, कॉमन सिविल कोड और धारा 370 भी जुड़ गए. अब सहमति बन चुकी थी, और आडवाणी जी का नाम घोषित होना था.

सरसंघचालक ने भाजपा के दूसरे बड़े नेता मुरली मनोहर जोशी को बुलाया और उन्हें इस फैसले से अवगत कराया और कहा कि वह संघ के अनुशासित कार्यकर्ता के नाते चुप रहें और आडवाणी जी को प्रधानमंत्री बनवाने में सहयोग करें. देश के इतिहास में पहली बार किसी राजनीतिक दल ने पीएम इन वेटिंग का नाम घोषित कर दिया.

अब सवाल आया कि भाजपा का अध्यक्ष कौन हो? आडवाणी जी के सुझाव पर राजनाथ सिंह को अध्यक्ष बनाने का फैसला हुआ. माना गया था कि राजनाथ सिंह आडवाणी जी की सलाह पर सारे काम करेंगे, लेकिन चार महीने के भीतर राजनाथ सिंह को लगा कि अध्यक्ष तो अध्यक्ष होता है. उन्होंने अपनी कार्यशैली स्वर्गीय प्रमोद महाजन वाली अपना ली. परिणामस्वरूप आडवाणी जी और राजनाथ सिंह में खटपट शुरू हो गई. यह खटपट बढ़ते-बढ़ते आडवाणी जी की टीम के मुखिया अरुण जेटली तक पहुंच गई, जिन्होंने राजनाथ सिंह के ख़िलाफ़ मोर्चा ही खोल दिया.

कहां घात-प्रतिघात शुरू हुए पता नहीं, पर भाजपा की तरफ से एक ही नाम प्रधानमंत्री पद के लिए सामने था-लालकृष्ण आडवाणी का. अचानक अरुण शौरी ने अगले प्रधानमंत्री के लिए नरेंद्र मोदी का नाम उछाल दिया, जिसका अगले ही दिन अरुण जेटली ने समर्थन कर दिया. भाजपा में सभी ईश्वर को मानने वाले होते हैं और हिंदू धर्म में कहा गया है कि अगले पल की ख़बर नहीं... तो जिस धर्म में अगले पल की ख़बर नहीं, वहां मोदी के नाम की घोषणा एक संकेत देती है. संकेत यह है कि अयोध्या कांड में जांच कर रहे लिब्राहन आयोग ने यदि कहीं आडवाणी जी के ऊपर टिप्पणी कर दी तो इसी बार मोदी को प्रधानमंत्री बनाया जाए, इसकी यह पेशबंदी है. श्री आडवाणी को मोदी का नाम समझ नहीं आया या वह पचा नहीं पाए, तो उन्होंने अगले प्रधानमंत्री के लिए शिवराज सिंह चौहान का नाम ले लिया.

इस सब घात-प्रतिघात का परिणाम यह हुआ कि आडवाणी जी का चुनाव अस्त-व्यस्त हो गया. इतना बिखरा कि अहमदाबाद के एक अंग्रेजी दैनिक ने उनके हारने तक की संभावना छाप दी.

चुनाव का बिखरना नरेंद्र मोदी का आडवाणी के क्षेत्र पर ध्यान न देना ही माना जाएगा. क्या नरेंद्र मोदी को आडवाणी का शिवराज सिंह चौहान का नाम लेना इतना बुरा लगा कि उन्होंने आडवाणी जी का चुनाव अभियान संगठित है या नहीं, इस पर ध्यान ही नहीं दिया? इसीलिए वोटिंग के दिन सबसे ख़राब व्यवस्था गांधीनगर की थी, जहां से आडवाणी जी, देश के मनोनीत प्रधानमंत्री चुनाव लड़ रहे थे.

अब एक अप्रिय सवाल, कि यदि अटकलें सही साबित हुईं तो क्या होगा, यानी आडवाणी जी हार गए, तो क्या होगा? तब अमेरिका की पहली पसंद जसवंत सिंह भाजपा के प्रधानमंत्री पद पर होंगे या संघ की पहली पसंद मुरली मनोहर जोशी. इस सवाल का उत्तर इसमें छिपा है कि अमेरिकन लॉबी विहिप और सहयोगी दलों को कितना प्रभावित करती है. अगर यह संभव न हो पाया तो फिर एकमात्र नाम मुरली मनोहर जोशी का बचता है, जिन्हें भाजपा के सहयोगी दल समर्थन दे सकते हैं.

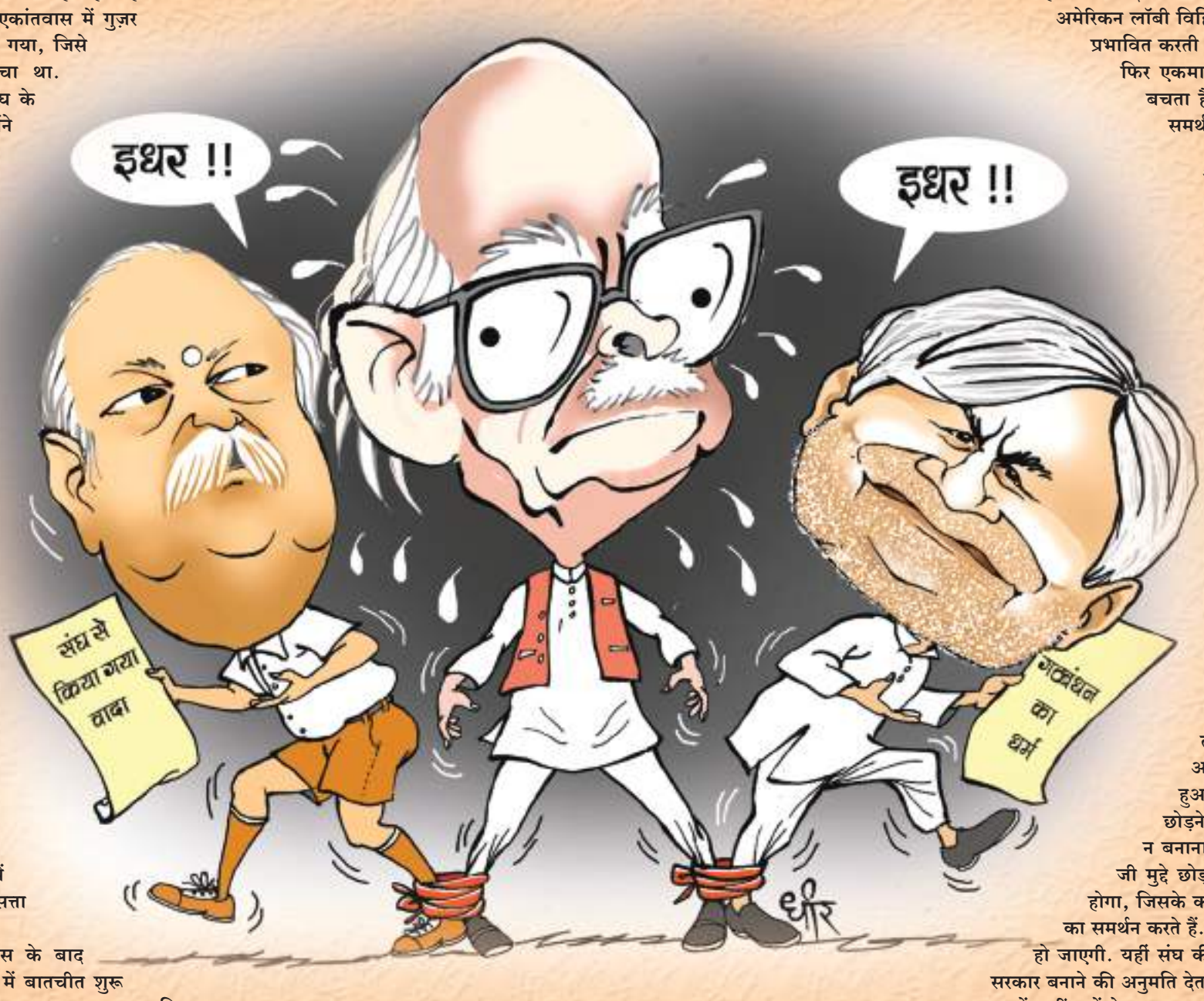

यदि अटकलें सही साबित हुईं तो क्या होगा, यानी आडवाणी जी हार गए, तो क्या होगा? तब अमेरिका की पहली पसंद जसवंत सिंह भाजपा के प्रधानमंत्री पद पर होंगे या संघ की पहली पसंद मुरली मनोहर जोशी. इस सवाल का उत्तर इसमें छिपा है कि अमेरिकन लॉबी विहिप और सहयोगी दलों को कितना प्रभावित करती है. अगर यह संभव न हो पाया तो फिर एकमात्र नाम मुरली मनोहर जोशी का बचता है, जिन्हें भाजपा के सहयोगी दल समर्थन दे सकते हैं.

एक दूसरी स्थिति और आ सकती है कि भाजपा जिन मुद्दों पर चुनाव लड़ रही है यानी संघ के मुद्दों पर, यदि उसे पूर्ण बहुमत न मिला तो क्या होगा? नीतीश कुमार साफ कह चुके हैं कि वह राममंदिर, धारा 370 और समान नागरिक संहिता पर भाजपा के साथ नहीं हैं और यदि उसे सरकार बनानी है, उनके समर्थन से, तो उन्हें ये मांगें छोड़नी होंगी. 10 मई को नीतीश कुमार ने पटना में कहा कि एनडीए को सरकार बनाने के लिए बाहर से भी समर्थन लेना पड़ सकता है. ये स्थितियां राजनीति की एक और जटिलता की ओर इशारा कर रही हैं.

भाजपा पूर्ण बहुमत नहीं पा सकी और उसे नीतीश कुमार जैसे सहयोगियों की बात माननी पड़ी तो उस वायदे का क्या होगा जो आडवाणी जी और संघ के बीच हुआ है कि कुछ भी हो, मुद्दे नहीं छोड़ने हैं. मुद्दे छोड़ने से बेहतर है सरकार न बनाना और यदि भाजपा या आडवाणी जी मुद्दे छोड़ते हैं तो संघ की साख का क्या होगा, जिसके कहने पर लाखों स्वयंसेवक भाजपा का समर्थन करते हैं. विहिप की शंका तब सही साबित हो जाएगी. यहीं संघ की परीक्षा है कि वह मुद्दे छोड़ कर सरकार बनाने की अनुमति देता है या सरकार बनाना छोड़ अगले चुनाव में इन्हीं मुद्दों के आधार पर बहुमत वाली भाजपा की सरकार बनाने की रणनीति पर काम करता है.

भाजपा में एक वर्ग उन लोगों का भी है जिनका मानना है कि यदि मुद्दों को लेकर बहुमत न मिला तो इसका मतलब कि भारत की जनता इन मुद्दों को अस्वीकार कर रही है और अब भाजपा को पूर्ण रूप से बदलने की तैयारी करनी चाहिए. लोकसभा चुनाव का परिणाम आते ही भाजपा की परीक्षा प्रारंभ हो जाएगी.

अब जसवंत सिंह व मुरली मनोहर जोशी के बारे में. जसवंत सिंह प्रैक्टिकल हैं. इतने प्रैक्टिकल कि उन्होंने बोफोर्स तोप की तारीफ भाजपा की कार्यकारिणी में भी की थी. वह आधुनिक हैं. उनके सबसे संबंध हैं, लेकिन उनकी ख़ुद की पार्टी और संघ उन्हें कम पसंद करते हैं, विहिप तो उन्हें बिल्कुल नहीं चाहती. वहीं मुरली मनोहर जोशी संघ और विहिप की पसंद हैं और पिछले पांच सालों से बड़े नेता होते हुए भी नेतृत्व की कतार से अलग हैं,

लेकिन आडवाणी जी के परम सहयोगी सुधींद्र कुलकर्णी तो कांग्रेस के साथ सरकार बनाना चाहते हैं. वह यह बात बिना आडवाणी जी की अनुमति के बोल नहीं सकते, अन्यथा अब तक गोविंदाचार्य बन गए होते. यहीं आडवाणी पर संघ के लोगों द्वारा की गई आलोचना याद आती है. उनका कहना है कि पिछले पांच सालों में आडवाणी ने मनमोहन सिंह को कमज़ोर प्रधानमंत्री कह कर लताड़ा, पर एक बार भी सोनिया गांधी के बारे में नहीं कहा कि वह कमज़ोर फैसले लेने के लिए क्यों मनमोहन से कहती हैं और इन फैसलों के लिए सोनिया गांधी ज़िम्मेदार हैं. आडवाणी जी यह भी कहते रहे हैं कि 10,जनपथ से फैसले होते हैं पर उन्होंने सोनिया गांधी की कभी आलोचना नहीं की. उन्होंने राहुल गांधी पर भी कभी कुछ नहीं कहा. इतना ही नहीं, क्यों आडवाणी जी ने सोनिया जी के विदेशी मूल का सवाल ही इन चुनावों में नहीं उठाया, जबकि पांच साल पहले छह अप्रैल 2004 को भाजपा ने चुनाव आयोग को लिखकर दिया था कि वे कांग्रेस पार्टी की अध्यक्षा सोनिया गांधी के विदेशी मूल का होने का मुद्दा उठाना बिल्कुल बंद नहीं करेंगे (दे विल नॉट स्टॉप रेज़िंग द इश्यू ऑफ द फॉरेन ओरिजिन ऑफ कांग्रेस प्रेसीडेंट सोनिया गांधी).

संघ वालों को इसका कारण समझ नहीं आ रहा था, पर अब सुधींद्र कुलकर्णी के वक्तव्य ने इस रहस्य को खोल दिया है. लॉर्ड मेघनाद देसाई आडवाणी जी के दोस्त हैं. तो क्या आडवाणी जी ने लॉर्ड मेघनाद देसाई की राय मान ली है और एक रणनीति के तहत उन्होंने सोनिया और राहुल गांधी की आलोचना नहीं की, ताकि अगर ज़रूरत हो तो दोनों दल मिलकर सरकार बना सकें?

यह आर्यावर्त, जम्बूद्वीप, भरतखंड है, यहां कुछ भी हो सकता है. अगला हफ्ता सचमुच चमत्कारिक होने जा रहा है. देखते जाइए, चेहरे और सिद्धांत कैसे बदलते हैं.

संतोष भारतीय
editor.chauthiduniya@gmail.com

कायापलट में कामयाब हो रही है कांग्रेस

बेनी प्रसाद वर्मा

अजय कुमार

उत्तर प्रदेश के चुनावी समर में इस बार कई रंग देखने को मिले. राष्ट्र निर्माण की बात करने वाले अधिकतर नेता सार्थक बहस के बजाय आरोप-प्रत्यारोप ही लगाते रहे. पांच चरणों में हुए मतदान के लिए करीब दो महीने तक अपने शबाब पर रहा चुनाव प्रचार 11 मई को थम गया. नेताओं के भाग्य अब ईवीएम में बंद हो चुके हैं. 16 मई को पता चल जाएगा कि कौन कितने पानी में था. नतीजे आने से पहले जो संकेत मिल रहा है, उसके अनुसार अबकी कांग्रेस की उत्तर प्रदेश में स्थिति काफी हद तक मज़बूत हो सकती है. कांग्रेसी प्रत्याशी जो पिछले दो दशकों से मुकाबले से दूर रहते थे, अबकी कई सीटों पर अपने विरोधियों को जबर्दस्त टक्कर देते दिखे. भाजपा ने जहां हिंदुत्व का कार्ड खुल कर खेला, वहीं वह कांग्रेस, बसपा और सपा पर तुष्टिकरण का आरोप भी लगाती रही. अधिकतर सीटों पर मुक़ाबला चौतरफा रहने के कारण अबकी कुछ सीटों को छोड़ कर अन्य क्षेत्रों में विभिन्न प्रत्याशियों के बीच जीत-हार का अंतर काफी कम रह सकता है. मतदान का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम रहने और एक वर्ग विशेष द्वारा इस बार वोट बैंक के रूप में मतदान करने के बजाय अपने विवेक के आधार पर मतदान करने के कारण भी यह नहीं पता चल पा रहा है कि ऊंट किस करवट बैठेगा.

नेताओं से चालाक मतदाताओं ने अंतिम समय तक अपने पत्ते नहीं खोले. उसने सुनी सबकी, सबसे वोट का वादा भी किया लेकिन मतदान स्थल पर अपनी मर्जी का बटन दबाया. यही वजह थी राजनैतिक पंडित भी माथा पीटते रह गए. बसपा को छोड़कर सभी दलों ने मतदाताओं को रिझाने के लिए फिल्मी कलाकारों और खेल हस्तियों का खूब सहारा लिया. संजय दत्त, हेमा मालिनी, जया भादुड़ी, महिमा चौधरी, सलमान ख़ान, असरानी, जयाप्रदा, राज बब्बर जैसे फिल्मी सितारे जमीं को रोशन करते रहे, वहीं अजहरूद्दीन जैसे क्रिकेट स्टार ने भी कई सभाएं करके अपनी लोकप्रियता भुनाने का मौका नहीं छोड़ा. वरुण गांधी, राहुल गांधी, प्रियंका गांधी, अखिलेश यादव, शरद त्रिपाठी और तृप्ति शाक्य जैसे नेता पार्टी का युवा चेहरे बने रहे.उत्तर प्रदेश की 80 सीटों के लिए हुए मतदान में 1368 प्रत्याशी ताल ठोकते दिखे. अबकी कई दिग्गजों की प्रतिष्ठा दांव पर लगी दिख रही है. भाजपा अध्यक्ष राजनाथ सिंह, मुरली मनोहर जोशी, मुख्तार अब्बास नकवी, अशोक प्रधान, वरुण गांधी, संतोष गंगवार, विनय कटियार, रमाकांत यादव, बाग़ी नेता कल्याण सिंह, कांग्रेस के श्रीप्रकाश जायसवाल, महावीर प्रसाद, बेनी प्रसाद वर्मा, सोमपाल शास्त्री, राज बब्बर, जितिन प्रसाद, रामलाल राही, रीता बहुगुणा जोशी, जगदंबिका पाल, हर्षवर्धन सिंह, भोला पांडेय, रालोद की अनुराधा चौधरी, हुकुम सिंह गूजर, जयंत चौधरी, बसपा के साहिब सिद्दीकि, शफीकुर्रहमान बर्क, डीपी यादव, अखिलेश दास गुप्ता, स्वामी प्रसाद मौर्य, धनंजय सिंह, नरेश अग्रवाल, अकबर अहमद डंपी, मुख्तार अंसारी, सपा की जयाप्रदा, श्यामा चरण गुप्ता, मनोज तिवारी, मोहन सिंह जैसे नेता ताल ठोक कर अपनी जीत का दावा नहीं कर पा रहे हैं. वहीं ऐसे दिग्गज नेताओं की भी कमी नहीं है जो जीत के प्रति पूरी तरह आश्वस्त हैं. कांग्रेस अध्यक्षा सोनिया गांधी, राहुल गांधी, सपा प्रमुख मुलायम सिंह यादव, रालोद नेता चौधरी अजित सिंह, अखिलेश यादव, क्रिकेटर से नेता बने अजहरूद्दीन अपनी जीत के प्रति काफी निश्चिंत हैं. तमाम कोशिशों के बाद भी जो नेता चुनावी जंग में काफी पीछे छूटते दिख रहे हैं, उनमें सहारनपुर से सपा के रशीद मसूद, कैराना से भाजपा के हुकुम सिंह, मुजफ्फरनगर से सपा के ठाकुर सोम संगीत, बिजनौर से बसपा के शाहिद सिद्दीकी , मुरादाबाद से भाजपा के सर्वेश कुमार, रामपुर से मुख्तार अब्बास नकवी और सपा की जयाप्रदा में से एक की हार निश्चित है. इसके अलावा संभल से सपा से बगावत करके बसपा के टिकट से चुनाव लड़ रहे शफीकुर्रहमान बर्क, मेरठ से बसपा के मुलुक नागर, बागपत से कांग्रेस के सोमपाल शास्त्री, बुलंदशहर से भाजपा के अशोक प्रधान, अलीगढ़ से भाजपा की श्रीमती शीला गौतम, मथुरा से बसपा के श्याम सुंदर शर्मा, फतेहपुर सीकरी से कांग्रेस के राज बब्बर, फिरोजाबाद से बसपा के एसपी सिंह बघेल, मैनपुरी से भाजपा का युवा चेहरा और गायिका तृप्ति शाक्य, एटा से बसपा के देवेंद्र सिंह यादव, बदायूं से इसी पार्टी के बाहुबली डीपी यादव, आंवला से इसी पार्टी के सर्वराज सिंह, बरेली से कांग्रेस के प्रवीण सिंह ऐरन, पीलीभीत से सपा के रियाज अहमद, खीरी से बसपा के इलियास आजमी, धौरारा से भाजपा के राघवेंद्र सिंह, सीतापुर से कांग्रेस के रामलाल राही, उन्नाव से बसपा के बाहुबली अरुण शंकर शुक्ला उर्फ अन्ना, मोहनलालगंज से इसी पार्टी के जयप्रकाश रावत, लखनऊ से रीता बहुगुणा, सुल्तानपुर से बसपा के मो. ताहिर, प्रतापगढ़ से सपा के अक्षय प्रताप सिंह, फर्रुखाबाद से कांग्रेस के सलमान खुर्शीद, इटावा से बसपा के गौरी शंकर, कन्नौज से भाजपा के सुब्रत पाठक, कानपुर से बसपा की सुखदा मिश्रा, झांसी से भाजपा के रवींद्र शुक्ला, फतेहपुर से पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह के पुत्र अजय सिंह लोजपा से, इलाहाबाद से बसपा के अशोक बाजपेयी, बाराबंकी से कमला प्रसाद रावत, फैजाबाद से सपा के मित्रसेन यादव, अंबेडकर नगर से बसपा के राकेश पांडेय, कैसरगंज से बसपा के सुरेश अवस्थी, श्रावस्ती से बसपा के रिजवान जहीर, गोंडा से बसपा के कीर्तिवर्धन सिंह, डुमरियागंज से सपा के माता प्रसाद, संतकबीर नगर से बसपा के भीम शंकर तिवारी, महाराजगंज से इसी पार्टी के गणेश शंकर, गोरखपुर से बसपा के ही विनय तिवारी, कुसीनगर से इसी दल के स्वामी प्रसाद मौर्य, देवरिया से सपा के मोहन सिंह, आजमगढ़ से बसपा के अकबर अहमद डंपी, सलेमपुर से सपा के हरि केवल प्रसाद, बलिया से भाजपा के मनोज सिन्हा, जौनपुर से सपा के पारस नाथ यादव, वाराणसी से कांग्रेस के राजेश मिश्रा, चंदौली से सपा के रामकिशन यादव तथा मिर्जापुर से ददुआ के भाई बाल कुमार पटेल हैं. ये मुकाबला शुरू होते समय मजबूत स्थिति में दिख रहे थे, लेकिन अब चुनाव के बाद पिछड़ते दिखाई दे रहे हैं. वैसे तो सभी सीटों पर मुकाबला कांटे का दिख रहा है, लेकिन आगरा मंडल की फतेहपुर, फिरोजाबाद और एटा संसदीय क्षेत्र में निवर्तमान सांसदों का मुक़ाबला देखने वाला है. फतेहपुर संसदीय सीट पर आगरा के सांसद राज बब्बर और इटावा के सांसद रघुराज सिंह शाक्य के बीच मुक़ाबला है. दोनों ही अपना-अपना संसदीय क्षेत्र छोड़कर यहां आए हैं. इसी प्रकार फिरोजाबाद सीट पर निवर्तमान सांसद एमपी बघेल और अखिलेश यादव आमने-सामने हैं. पिछले लोकसभा चुनाव में बघेल सपा के टिकट से जलेसर सीट से और अखिलेश यादव कन्नौज से चुनाव जीते थे. अब बघेल मुलायम का साथ छोड़कर हाथी पर बैठ गए हैं. बघेल को हराने के लिए अखिलेश ने पूरी ताक़त लगा रखी है. एटा में भी दो सांसदों में मुकाबला है. सपा के टिकट से चुनाव जीते देवेंद्र यादव नीले रंग में रंग गए हैं और वह भाजपा के बाग़ी नेता और सांसद कल्याण सिंह को चुनौती दे रहे हैं. कल्याण पिछला चुनाव बुलंदशहर से भाजपा के टिकट पर जीते थे. ऐसे में हार-जीत किसी की भी हो, एक सांसद का हारना तय है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रीता बहुगुणा जोशी

राज बब्बर

श्रीप्रकाश जायसवाल

सभी फोटो-प्रभात पाण्डेय

बिहार में भी बांछें खिलीं

साधु यादव

कहते हैं कि जो होता है, वह अच्छे के लिए ही होता है. बिहार में सीट बंटवारे से नाराज़ कांग्रेस ने जब अकेले चुनाव लड़ने का फैसला किया तो लगा कि पार्टी ने गुस्से में जहर पी लिया, लेकिन सात मई को सूबे में मतदान की प्रकिया पूरी होने के बाद जो संकेत मिल रहे हैं उससे लगता है कि 16 मई को राज्य में कांग्रेस का पुनर्जन्म होने वाला है. लोकसभा चुनाव की घोषणा के बाद लालू प्रसाद व रामविलास पासवान ने कांग्रेस को मात्र तीन सीटें देकर उसे प्रदेश की राजनीति में हाशिए पर लाने का पक्का इंतजाम कर दिया था. दिल्ली में जब दोनों नेताओं ने कांग्रेस के लिए मात्र तीन सीटें छोड़ने का एलान किया, तो कांग्रेसी नेताओं के साथ ही साथ ही आम कार्यकर्ताओं का पारा भी गरम हो गया. लोकसभा चुनाव के लिए बुने गए सपने को टूटता देख प्रदेश कांग्रेस अध्यक्ष अनिल शर्मा व कार्यकारी अध्यक्ष समीर सिंह ने आलाकमान पर राज्य में अकेले चुनाव लड़ने का दबाव डाला. दरअसल अनिल व समीर की जोड़ी यह चाहती थी कि इस बार ज़मीनी ताक़त व केंद्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में सीटों का बंटवारा हो, लेकिन जब लालू-पासवान ने कांग्रेस को ठेंगा दिखा दिया तो प्रदेश के नेताओं के दबाव में पार्टी को अकेले चुनाव लड़ने का फैसला करना ही पड़ा.

पहले चरण में कांग्रेस को कई मोर्चे पर एक साथ लड़ना पड़ा. प्रत्याशियों के चयन, मुक्कमल तैयारी के लिए समय व संगठन की कमी के साथ ही साथ प्रदेश की जनता का भरोसा जीतने की कड़ी चुनौती पार्टी के सामने थी. इसके अलावा राजद व लोजपा की बयानबाजी का माकूल जवाब देने में भी कांग्रेसी नेताओं को जुटना पड़ा. जमुई की सभा में सोनिया गांधी ने लालू व पासवान पर परोक्ष वार कर बिहार कांग्रेस को संजीवनी देने का काम कर दिया. इस कारण 16 अप्रैल को पहले चरण की 13 में से कम से कम चार सीटों पर काफी बेहतर प्रदर्शन कर कांग्रेस ने राजनीतिक पंडितों को अचरज में डाल दिया. सासाराम, काराकाट, जमुई और महाराजगंज में पार्टी प्रत्याशियों ने कड़ी मेहनत कर विरोधियों को परेशानी में डाल रखा है. सासाराम व काराकाट में तो कांग्रेस के जीतने के आसार काफी अच्छे हैं. जमुई व महाराजगंज के परिणाम भी चौंकाने वाले हो सकते हैं. इसके अलावा गया, गोपालगंज, जहानाबाद और औरंगाबाद में कांग्रेस ने मुक़ाबले को त्रिकोणात्मक बना दिया. इस चरण के मतदान के बाद साफ हो गया कि कांग्रेस का पुराना जनाधार लौटने लगा है. ब्राह्मण, भूमिहार, राजपूत के अलावा काफी संख्या में मुसलमान मतदाताओं ने कांग्रेस का हाथ थाम लिया है. दलित वोटों की सेंधमारी में भी पार्टी सफल रही. पहले चरण के रुझान से गदगद पार्टी नेताओं ने दूसरे चरण में काफी आक्रामक अंदाज में विरोधियों पर हमला बोल दिया. नीतीश के साथ-साथ लालू व पासवान भी पार्टी नेताओं के निशाने पर रहे. इस दौर में कांग्रेस ने पश्चिम चंपारण, शिवहर, सीतामढ़ी, मधुबनी, झंझारपुर और समस्तीपुर में अपनी पूरी ताक़त झोंक दी. कांग्रेस की इस आक्रामकता ने नीतीश के साथ ही साथ लालू व पासवान की भी नींद उड़ा कर रख दी. इस चरण में पार्टी को मजबूत प्रत्याशियों का भी लाभ मिला. पश्चिम चंपारण में साधु यादव, शिवहर में लवली आनंद, सीतामढ़ी में समीर महासेठ और मधुबनी में शकील अहमद के जलवे ने मतदाताओं को काफी प्रभावित किया. इन सीटों पर कांग्रेस को काफी उम्मीदें हैं.

शेखर सुमन

तीसरे चरण में कांग्रेस पूरे तेवर में आ चुकी थी. धर्मनिरपेक्षता के साथ ही साथ देश की सुरक्षा व विकास जैसे मुद्दे पर पार्टी ने अपना दांव लगाया. इस चरण में मुस्लिम बहुल क्षेत्रों के कारण यह कांग्रेस के लिए ज़रूरी भी था. किशनगंज व सुपौल में पार्टी बहुत ही बेहतर स्थिति में है. खगड़िया में पार्टी प्रत्याशी अबू अली कैशर ने जद-यू के दिनेश यादव की नींद इड़ा कर रख दी है. अररिया, बेगूसराय, बांका और यहां तक कि भागलपुर में भी पार्टी को मुसलमानों का साथ मिला. चौथे चरण में कांग्रेस ने पटना साहिब से शेखर सुमन को मैदान में उतरकर चुनाव को स्टार वार में बदल दिया.

इस तरह निष्कर्ष निकाला जाए तो कहा जा सकता है कि बिहार में हाशिए पर रही कांग्रेस को इस चुनाव में नया जीवन मिला है. जीत का आंकड़ा भले ही 16 मई को बहुत बड़ा न दिखाई पड़े, पर हर क्षेत्र में कांग्रेस अपनी मज़बूत उपस्थिति दिखलाने में ज़रूर सफल होगी.

शकील अहमद

संतोष कुमार

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सासाराम, काराकाट, जमुई और महाराजगंज में पार्टी प्रत्याशियों ने कड़ी मेहनत कर विरोधियों को परेशानी में डाल रखा है. सासाराम व काराकाट में तो कांग्रेस के जीतने के आसार काफी अच्छे हैं. जमुई व महाराजगंज के परिणाम भी चौंकाने वाले हो सकते हैं.

लुंज-पुंज गठबंधन से राष्ट्रीय सरकार बेहतर

गंगेश मिश्र

यह तय है कि जब आप इन पंक्तियों को पढ़ रहे होंगे, तब तक चारों ओर यह शोर मच रहा होगा कि लोकसभा फिर त्रिशंकु बन गई. राष्ट्रीय पार्टी होने के नाम पर कांग्रेस और भाजपा अकेले अपने दम पर बहुमत न ला पाने पर शर्मसार हो रही होंगी. दूसरी ओर क्षेत्रीय दलों के नेताओं की ब्रेकफास्ट से लेकर डिनर तक की डिप्लोमेसी चल रही होगी. वोट डालकर कल तक राष्ट्रीय फर्ज निभाने के गर्व में डूबे देशवासी इस चिंता में डूबे हो सकते हैं कि न जाने सरकार बन भी पाएगी या नहीं. लेकिन जब चुनाव हुआ है, तो सरकार भी बनेगी ही. किसकी? इसका जवाब ज़रा टेढ़ा मिलेगा. कहते हैं कि राजनीति अपने उत्पादक समाज का सबसे सही आईना होती है. फिर ऐसी आशाहीनता, विरक्ति, आत्मभर्त्सना और सामाजिक कर्तव्यों के प्रति उदासीनता से भरे वातावरण का निर्माण क्या साजिशन किया जा रहा है? आज जिससे बात करें, जिस अख़बार को पढ़ें या जिस भी ख़बरिया चैनल को देखें, चीख-चीख कर सबका यही कहना है कि पंद्रहवीं लोकसभा त्रिशंकु रहेगी. कैसे? क्या दो तिहाई सीटों के परिणाम नहीं आ रहे हैं? जब लोकसभा की सभी 543 सीटों के परिणाम आ रहे हैं, तो सदन त्रिशंकु कैसे कहलाएगा? जिस सदन में पूरे देश से चुने हुए जनप्रतिनिधि बैठे हों, क्या उसे त्रिशंकु कहना चाहिए? मेरे हिसाब से यह घटिया दर्जे के निराशावाद का प्रमाण है, जिसे आज की तारीख़ में स्वीकार करना वैसा ही होगा, जैसा शौचालय की दीवारों पर लिखी कविताओं को याद करना.

हालात हालांकि ऐसे ही लग रहे हैं. इसलिए कि खंडित जनादेश की कोख से जो सरकार जन्म लेगी वह मज़बूत नहीं, मज़बूर ही होगी. आकार-प्रकार में उसका हाल अंधों के हाथी वाला होगा. यह तय है कि इस बार के चुनाव में अपनी सीमा तक ही सीमित सोच रखने वाले क्षेत्रीय दल और मज़बूत होकर उभरेंगे. बहुत संभव है कि वे इतने मज़बूत होकर आएं कि केंद्र में किसी एक दल या गठबंधन की सरकार ही न बनने दें. ऐसे में होगी सांसदों की ख़रीद-फरोख्त. अभी तक मिल रहे संकेतों के मुताबिक इस बार सरकार बनाने वालों को दो-चार या आठ-दस नहीं, बल्कि थोक के भाव में सांसद ख़रीदने होंगे. पूरी की पूरी पार्टी तक ख़रीदी और बेची जा सकती है. एक गठबंधन के दलों का बड़े पैमाने पर दूसरे में पाला बदल देखने को मिल सकता है. इसमें यह समझौता भी हो सकता है कि विभिन्न दलों के नेता बारी-बारी से प्रधानमंत्री की कुर्सी पर बैठें. इसके लिए समय सीमा कुछ भी हो सकती है. चुनाव से पहले जितने दावेदार थे, अगर चुनाव के बाद भी उनका दावा बना रहा तो एक प्रधानमंत्री के लिए समयसीमा छह-छह महीने भी रखनी पड़ सकती है. अगर इससे मिलता-जुलता भी कुछ हुआ तो यह न सिर्फ लोकतंत्र का मज़ाक होगा, बल्कि मतदाताओं का अपमान भी.

ऐसे में देश को शर्मसार होने से बचाने के लिए ठोस पहल करनी होगी.यह पहल तीन दिशाओं से हो सकती है. एक, तो राष्ट्रपति की ओर से. दूसरे कांग्रेस और तीसरे भाजपा की ओर से. सबसे पहले राष्ट्रपति की ओर से पहल इसलिए होनी चाहिए कि उन्हें ही प्रधानमंत्री की नियुक्ति करनी होती है. चुनाव बाद बने किसी हास्यास्पद गठबंधन के नेता को शपथ दिलाने से बेहतर होगा कि वह देश की दो सबसे बड़ी पार्टियों-कांग्रेस और भाजपा की मदद से अपने नेतृत्व में एक राष्ट्रीय सरकार बनवाएं. इसमें चाहने पर किसी भी अन्य दल या क्षेत्रीय पार्टियों को भी शामिल होने का मौका हो. प्रधानमंत्री इस सरकार में भी होगा और वह संसद के प्रति जवाबदेह भी होगा. सच पूछें तो देश में एक ऐसी राष्ट्रीय सरकार वक्त का तकाजा है. अंतरराष्ट्रीय स्तर पर राजनीति जिस तेजी से करवट बदल रही है, उसमें देश का एकजुट दिखना आवश्यक है. वैश्विक मंदी और आतंकवाद से मुक़ाबले के लिए एक राष्ट्रीय नीति और सरकार बनानी होगी. यह कहना ठीक नहीं होगा कि हमें सभी क्षेत्रों में कामयाबी मिलेगी ही,लेकिन उस दिशा में पहल तो होनी ही चाहिए. वैसे भी ग़ौर से देखें तो राष्ट्रीय नीतियों को लेकर आवश्यक परिपक्वता कांग्रेस और भाजपा को छोड़ अन्य किसी भी पार्टी में नज़र नहीं आती. इतना ही नहीं, ये दोनों पार्टियां नेतृत्व के मामले में भी धनी हैं. दोनों के पास इतने समझदार और परिपक्व नेता हैं, जो देश को नए नजरिए से चला कर दिखा सकते हैं. इसकी पुष्टि के लिए मनमोहन सिंह और उनसे पहले की वाजपेयी की सरकार को उदाहरण के तौर पर देखा जा सकता है. दोनों ही सरकारें नए नजरिए से देश को चलाने के लिए बनी थीं,लेकिन क्षेत्रीय दलों की खींचतान ने उन्हें चैन से कभी काम करने न दिया. गठबंधन चाहे एनडीए का रहा हो या फिर यूपीए का, उनमें शामिल दल कभी भी अपनी सीमाओं से बाहर देख ही नहीं पाए. वह चाहे माया रहीं हों या ममता या जयललिता, नवीन पटनायक रहे हों या चंद्रबाबू नायडू, करुणानिधि रहे हों या प्रकाश करात, मुलायम रहें हों या पासवान और लालू प्रसाद-लंगड़ी हमेशा लगती रही.

ये छोटी-मोटी पार्टियां किस तरह इशारे पर नचाएंगीं, इसकी मिसाल भी अभी से मिलने लगी है. समाजवादी पार्टी के प्रमुख मुलायम सिंह ने कहा है कि चुनाव के बाद केंद्र में वह उसी सरकार को समर्थन देंगे, जो उत्तरप्रदेश में मायावती की सरकार को गिरा दे. जब उत्तरप्रदेश जैसे बड़े राज्य के कई बार मुख्यमंत्री रहने वाले नेता की सोच इतनी संकीर्ण और अलोकतांत्रिक हो सकती है, तो अन्य छुटभैये नेताओं के बारे में तो सोचकर ही डर लगता है.

वैसे यूपीए और एनडीए सरकारों के कामकाज का ईमानदारी से विश्लेषण करें, तो दोनों में आश्चर्यजनक रूप से समानता दिखाई देती हैं. गौर से देखें तो नीतिगत मामलों के कदम लगभग समान ही देखने को मिलते हैं. सुधार की पैरोकार रहीं दोनों ही सरकारों ने देश के आर्थिक विकास पर काफी जोर दिया. स्वर्णिम चतुर्भुज योजना से लेकर एटमी करार जैसे मामलों में भी दोनों ने समान दृष्टिकोण अपनाया. इसमें कोई दो राय नहीं कि कांग्रेस पर मुस्लिम तुष्टिकरण और भाजपा पर हिंदूवादी पार्टी होने के आरोप लगते रहे हैं. पर इस सिलसिले में भी ध्यान से देखें तो पाएंगे कि इनके गठबंधनों में शामिल कई क्षेत्रीय दल अपने-अपने राज्यों में कहीं अधिक दलदल में धंसे हुए थे. इसलिए राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता का परिचय देते हुए इन दोनों को एक-दूसरे का साथ देने पर विचार अवश्य करना चाहिए.

दोनों दलों के बीच मुख्य अंतर तीन बातों पर ही है-राम मंदिर, समान नागरिक संहिता और अनुच्छेद 370. लेकिन क्या जब एनडीए की सरकार बनी थी, तब भाजपा ने इन मुद्दों को ठंडे बस्ते में नहीं डाल दिया था? राष्ट्रहित में स्थायी और मज़बूत सरकार बनाने की आवश्यकता को देखते हुए उसने लचीलेपन का परिचय दिया था. यानी राष्ट्रहित में अपने रुख़ में लचीलेपन के लिए भाजपा तैयार रहती है. इसी बात को आगे बढ़ाते हुए भाजपा के प्रधानमंत्री पद के उम्मीदवार लालकृष्ण आडवाणी के मुख्य सलाहकार सुधींद्र कुलकर्णी ने चंद दिनों पहले यह बयान भी दे डाला कि देश के हित में कांग्रेस के साथ मिलकर भी सरकार बनाने और चलाने के लिए भाजपा तैयार है. यानी, भाजपा के लिए अब कांग्रेस भी अछूत नहीं रही. इसलिए कांग्रेस और भाजपा तय कर लें, तो दो दर्जन छोटी-मोटी पार्टियों की मदद से कमज़ोर सरकार के बजाय राष्ट्रपति के नेतृत्व में दोनों प्रमुख पार्टियों की मदद से एक मज़बूत राष्ट्रीय सरकार बनाई जा सकती है.

जहां तक देश में क्षेत्रीय दलों के उदय की बात है, तो उनकी ताक़त 1989 के बाद से अधिक महसूस की जाने लगीं. पूरे देश में हर तबके में बढ़ती निराशा, असंतोष और नाराज़गी ने लोगों के मानस पटल से राष्ट्रीय पार्टियों की छवि मिटानी आरंभ कर दी. प्रकारांतर से राष्ट्रीय दलों के नेताओं के कद स्थानीय क्षत्रपों के सामने छोटे पड़ते गए. ऐसे में विभिन्न प्रांतों में क्षेत्रीय पार्टियों ने उन राष्ट्रीय पार्टियों की जगह ले ली जो स्थानीय भावनाओं को संतुष्ट नहीं कर पा रहीं थीं. यही कारण है कि क्षेत्रीय दलों द्वारा स्थानीय एजेंडों पर ही अड़ने की आशंका अधिक रहेगी. जैसे तमिलनाडु को लें. वहां चुनाव राष्ट्रीय तो छोड़िए, किसी क्षेत्रीय मुद्दे पर भी नहीं हुए हैं. वहां चुनाव हुआ है श्रीलंका के मुद्दे पर. इस मुद्दे पर कि श्रीलंकाई तमिलों के लिए ईलम यानी पृथक राष्ट्र के लिए कौन कितना खून बहा सकता है. जबकि भारत शुरू से इस ईलम के गठन के ख़िलाफ़ रहा है. इसकी रणनीतिक और वाजिब वजह भी रही है. इसलिए छोटे-छोटे दलों के सहारे सरकार चलाने में यह खतरा हमेशा बना रहेगा कि क्षेत्रीय मांगों के दबाव में राष्ट्रीय हितों से समझौते करने पड़ जाएं. पश्चिम बंगाल में ऐसा ममता बनर्जी कर सकती हैं, बिहार में लालू प्रसाद कर सकते हैं, तमिलनाडु में पीएमके-एमडीएमके वगैरह कर सकती हैं तो कश्मीर में पीडीपी. ये तो चंद उदाहरण हैं, ऐसे तत्वों की सूची बनाएं तो काफी लंबी हो जाएगी.तात्पर्य यह कि बिना किसी ख़ास जवाबदेही के हासिल हुई सत्ता बहुत खतरनाक साबित हो सकती है.

इसलिए आज चौराहे पर खड़े भारत को दिशा दिखाने की ज़रूरत है. इसमें कोई दो राय नहीं कि लोकतंत्र होने के कारण चुनाव और राजनीतिक अस्थिरता अपरिहार्य हैं. साथ ही यह भी सत्य है कि क्षेत्रीय दलों के उभार को रोका नहीं जा सकता है. लेकिन राष्ट्रीय हितों को क्षेत्रीय सीमाओं में जकड़ने से तो बचाया जा ही सकता है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दौर वैचारिक लचीलेपन का

साहित्य और सिनेमा में किसी को कोई नाम प्यार में देता है या नफरत में. लेकिन अगर मौजूदा भारतीय राजनीति को कोई नाम देना हो तो किस भावना से दिया जा सकता है? यकीनन तटस्थ होकर, वह भी-विचारहीन लचीलापन. आलम यह है कि आप इस समय किसी भी राजनीतिक पंडित से संभावित चुनाव परिणाम को लेकर पूछ लें, तो आमतौर पर सबका यही कहना होगा-जातक (लोकसभा) के लिए समय शुभ नहीं है. लोकसभा इस बार भी त्रिशंकु रहेगी. सरकार बनाने के लिए मतलब की यारी-दोस्ती निभाई जाएगी, जिससे साल-डेढ़ साल बाद ही मध्यावधि चुनाव की नींव अभी ही पड़ जाएगी.

बहरहाल, आज़ादी के बाद यह पहला आम चुनाव है, जिसमें लोकसभा की हर सीट पर माहौल एक अलग उपचुनाव वाला रहा. ऐसा लगा कि लोगों ने मतदान 543 सदस्यीय लोकसभा के लिए कम, अपने-अपने क्षेत्र को ध्यान में रखते हुए अधिक किया. नीतिगत कारणों से कमजोर पड़ते राष्ट्रीय दलों ने जानबूझ कर इस बार कोई राष्ट्रीय मुद्दा उभरने ही नहीं दिया. लिहाजा क्षेत्रीय स्तर पर राजनीति करने वालों की चांदी हो गई. बल्कि इन्हीं वजहों से लगभग दो दशकों में क्षेत्रीय पार्टियों की ताक़त बढ़ी है. अब इन क्षेत्रीय पार्टियों का लचीलापन देखिए कि जयललिता, मायावती और नवीन पटनायक जैसे मजबूत क्षेत्रीय नेता इस वक्त वैचारिक धरातल पर तटस्थ बने हुए हैं. पत्ते ही नहीं खोल रहे. कांग्रेस या भाजपा को लेकर अंतिम रूप से फिलहाल कुछ नहीं कह रहे. वैसे कहने को उनके पास बहुत कुछ है. है नहीं तो अनुकूल वक्त, जो चुनाव के बाद आएगा. सरकार बनाने के वक्त आएगा. हिंदी भाषी राज्यों को छोड़ दें तो अन्य प्रदेशों के क्षेत्रीय दलों के नेताओं की भाषा इतनी परिष्कृत हो गई है कि तू-तू मैं-मैं में उलझे राष्ट्रीय दलों के नेता उनसे काफी कुछ सीख सकते हैं. इन क्षेत्रीय दलों के नेताओं की उदारता देखिए कि केंद्रीय सत्ता के सबसे तगड़े दावेदारों-कांग्रेस और भाजपा-लिए कभी कभार ही कड़वी भाषा का इस्तेमाल कर रहे हैं. यह अति लचीलापन नहीं तो क्या है कि नवीन पटनायक प्रकरण को भाजपा ने हादसा के बजाय संयोग भर कहा. कहना ही होगा कि बिना किसी विचारधारा के राजनीति में आने वाले पटनायक जैसे नेता इतना लचीलापन हमेशा रखते हैं कि सत्ता के किसी भी समीकरण में फिट हो जाएं. हद तो यह कि प्रधानमंत्री पद पर दावा भी जताने लगें. राकांपा नेता शरद पवार का अलग ही पावर गेम चल रहा है. वह महाराष्ट्र में तो कांग्रेस के साथ हैं, लेकिन गुजरात और बिहार में वह उसके ख़िलाफ़ चुनाव लड़ रहे हैं. वह तीसरे मोर्चे में भी नहीं हैं. फिर भी खुशकिस्मत इतने कि तीसरे मोर्चे में शामिल भाकपा नेता एबी वर्धन उन्हें प्रधानमंत्री पद के लिए सबसे उपयुक्त बताते हैं. चौथे मोर्चे की समाजवादी पार्टी के महासचिव अमर सिंह भी ऐसी ही राय रखते हैं. खुद राकांपा नेता का कहना है कि चुनाव बाद सरकार के गठन में यूपीए को तीसरे और चौथे मोर्चे की ज़रूरत पड़ेगी. इतना ही नहीं, अगर पवार के लिए प्रधानमंत्री बनने के थोड़े से भी आसार नज़र आए तो मराठा गौरव के नाम पर शिवसेना भी उनका समर्थन करने को तैयार हो जाएगी.

पाला बदल एनडीए के साथ आए टीआरएस नेता चंद्रशेखर राव (दाएं)

फोटो-*पीटीआई*

इन क्षत्रपों की तरफ क्या नहीं है. महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उनके पास पैसा से लेकर जातिगत समीकरण तक हैं. उन्हें इंतजार है तो बस 16 मई का. एक बार परिणाम घोषित हो और वे सत्ता हथियाने की होड़ में जुट जाएंगे. इनके लिए विचारधारा कहीं कोई बाधा नहीं है. वे मानते भी हैं कि आज की तारीख़ में वामपंथी पार्टियां और भाजपा को छोड़ दें तो विचारधारा और सिद्धांत सबके ठेंगे पर ही हैं. यह ठीक है कि चुनाव बाद की स्थिति अभी बहुत साफ नहीं है. लेकिन कुछ बातें तो शीशे की तरह साफ हैं ही. सबसे पहले तो यह कि भाजपा की अगुआई में या उसके सहयोग से बनने वाली किसी भी सरकार से वामपंथी पार्टियां दूर ही रहेंगी. लेकिन, अगर भाजपा किसी भी तरह से कांग्रेस से अधिक सीटें ले आती है, तो तीसरे-चौथे मोर्चे में दरार पड़ सकती है. तीसरे मोर्चे से तेलुगुदेशम पार्टी और बीजू जनता दल को पाला बदलने में वक्त नहीं लगेगा. इसी तरह एनडीए सरकार में मंत्री रह चुके लोजपा नेता रामविलास पासवान चौथे मोर्चे में शायद ही रह पाएं. ऐसे में लालू-मुलायम अपने को छला गया महसूस करें, तो ग़लत नहीं होगा. वैसे इससे भी इंकार नहीं किया जा सकता कि किसी भी गठबंधन की गोटी लाल होती देख इन तीनों में से कोई भी एक-दूसरे को गच्चा दे उस ओर खिसक ले सकता है.

यही हाल वाममोर्चे का भी है. चुनाव में जिन पार्टियों ने कांग्रेस विरोध के नाम पर जनता से वोट मांगे, अब उनके ही नेता केंद्र में यूपीए सरकार बनाने को तैयार हो रहे हैं. परमाणु करार पर मनमोहन सरकार को लगभग गिरा ही चुकी वामपंथी पार्टियां तक बदले सुर में बोल रही हैं. केंद्र में अगर कांग्रेस और वामपंथी पार्टियां फिर सत्ता में साझीदार बनीं तो धोखे से आहत होंगी ममता बनर्जी, जिनके साथ मिलकर कांग्रेस पश्चिम बंगाल में सत्तारूढ़ वाममोर्चा के ख़िलाफ़ मैदान में उतरी है. कांग्रेस को भी अगर मतलब सीधा होता लगा तो तमिलनाडु में वह चुनाव पूर्व सहयोगी द्रमुक को एक झटके में छोड़ जयललिता का हाथ थाम सकती है. वैसे कांग्रेस तो हर उस क्षेत्रीय दल का हाथ थामना चाहती है, जो अपने-अपने राज्यों में अधिक सीटें लाने वाली हैं. इसलिए राहुल गांधी अगर बिहार के मुख्यमंत्री और जद-यू नेता नीतीश कुमार की तारीफ़ करते हैं, तो वह भी मतलब की यारी ही कर रहे होते हैं. लालू का उनके साथ जाना तय है, लेकिन अगर जद-यू वाकई में राजद से अधिक सीटें बिहार में ले आता है तो कांग्रेस की नई रणनीति सामने आ सकती है. ऐसी रणनीति उत्तरप्रदेश समेत कुछ अन्य राज्यों में भी देखने को मिल सकती है. राजनीति में मतलब की यारी की ताजा मिसाल है आंध्रप्रदेश की तेलंगाना राज्य समिति (टीआरएस). टीआरएस आंध्र में तीसरे मोर्चे में है. वामपंथी दलों वाले इस मोर्चे में राज्य के पूर्व मुख्यमंत्री और टीडीपी नेता चंद्रबाबू नायडू भी हैं. लेकिन टीआरएस ने चुनाव परिणाम का इंतजार किए बगैर एनडीए की गोद में बैठने का फैसला कर लिया. यह चाल ऊपर से जितनी सरल लगती है, उतनी है नहीं. अब तक के संकेत बताते हैं कि आंध्रप्रदेश विधानसभा चुनाव में टीडीपी की वापसी होने वाली है. सरकार बनाने के लिए अगर कुछ सीटें कम भी पड़ गईं, तो चिरंजीवी की प्रजा राज्यम पार्टी (पीआरपी) समर्थन देने के लिए तैयार है. यानी दोनों वहां कांग्रेस को दोबारा सरकार बनाने से रोकने के लिए हाथ मिला सकती हैं. ऐसे में टीआरएस को कोई ख़ास लाभ नहीं हो सकता.लेकिन लोकसभा चुनाव में हालात दूसरे होने होंगे. टीआरएस को पिछली बार की तरह इस बार भी लोकसभा की पांच सीटें मिल सकती हैं. त्रिशंकु लोकसभा में ये पांच सीटें एनडीए का पलड़ा भारी कर देंगी. उधर, राज्य में कांग्रेस विरोधी टीडीपी की अगर सरकार बनी तो नायडू यूपीए के बजाय एनडीए की राजनीति करेंगे. तीसरे मोर्चे का वजूद आंध्र में कुछ ख़ास नहीं है, इसलिए वामपंथियों को छोड़ना उनके लिए मुश्किल नहीं होगा. तब राज्य की सत्ता में साझेदारी के लिए टीआरएस बड़ी आसानी से एनडीए का पत्ता खेल सकती है.

इन सारे उलटफेर में जनता अब पांच साल बाद ही मायने रखेगी. लेकिन क्या इसे लेकर किसी को भ्रम है कि इस तरह की उलटफेर भी जनता की ही देन होती है?

गंगेश मिश्र

feedback.chauthiduniya@gmail.com

कम होते मुस्लिम मतों का मतलब

ए.यू.आसिफ

पंद्रहवें आम चुनाव में मत-प्रतिशत कम होने की सूचना है. यह भी ख़बर है कि मुसलमानों में यह प्रतिशत और भी कम रहा है. कुछ विशेषज्ञ इसका कारण लोकतंत्र में विश्वास का कम होना बता रहे हैं, तो कुछ राजनीतिक पार्टियों को दोष दे रहे हैं. जहां तक मुसलमानों में मत-प्रतिशत के कम होने का प्रश्न है, तो इसका कारण लोकतंत्र में विश्वास का कम होना कतई नहीं है. इसके लिए खुद राजनीतिक पार्टियां ही काफी हद तक जिम्मेदार लगती हैं. इन पार्टियों का यह रवैया केवल मुसलमानों के लिए ही नहीं है, बल्कि यह आमतौर पर सभी के साथ है. इन राजनीतिक पार्टियों को चुनाव के समय ही मतदाता याद आते हैं और उनकी समस्याएं उचित व आवश्यक महसूस होती हैं. लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में अत्यंत पिछड़ेपन के कारण मतदाता इन राजनीतिक पार्टियों की अनदेखी या अजीबोगरीब रवैए को सहन नहीं कर पाते हैं.

कांग्रेस व मुसलमानों में संबंध के मामले में जमीयतुल उलेमा हिंद की भी भूमिका ख़ास तौर से रही है. इसके अहम नेता मौलाना हुसैन अहमद मदनी और इनसे पूर्व मौलाना महमूद हसन अन्य मुस्लिम विद्धानों समेत आज़ादी की लड़ाई एवं आज़ादी के बाद इस पार्टी से जुड़े रहे. कांग्रेस ने इनमें से कुछ को राज्यसभा की सदस्यता से भी सुशोभित किया. पर समय गुज़रने के साथ-साथ कांग्रेस-जमीयत संबंध मधुर नहीं रहे. इस समय जमीयत के दो घड़े हैं. एक की कमान दिवंगत मौलाना असद मदनी के सुपुत्र मौलाना महमूद मदनी के हाथ में है, तो दूसरे धड़े के मुखिया मौलाना असद मदनी के भाई मौलाना अरशद मदनी हैं. मौलाना महमूद मदनी कुछ समय पूर्व चौधरी अजीत सिंह की लोकदल के नज़रे करम पर राज्यसभा सदस्य बनाए गए थे.

मुसलमानों की राजनीतिक पार्टियों से संबंध की दास्तान बहुत ही दिलचस्प है. 2001 की जनगणना के अनुसार मुस्लिम आबादी 138.2 मिलियन (13.4 प्रतिशत) है. यह आबादी पूरे देश में फैली हुई है. विभाजन पश्चात व्यावहारिक तौर पर कांग्रेस ही एकमात्र पार्टी के तौर पर रह गई थी. यह वह पार्टी थी, जिससे मुस्लिम लीग के रहते हुए भी विभाजन पूर्व मुसलमानों की बड़ी संख्या संबंधित थी. सर्वविदित है कि 1885 में कांग्रेस की स्थापना के बाद से लेकर 1947 में स्वाधीनता पूर्व तक आठ मुस्लिम नेताओं ने इसकी अध्यक्षता की. इसी के साथ-साथ यह मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ही थे, जिन्होंने कांग्रेस अध्यक्ष के तौर पर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आज़ादी के मामले में अंग्रेजों से बातचीत की थी और वह बातचीत आज़ादी की बुनियाद भी बनी थी. मौलाना आज़ाद जैसे दिग्गज नेता, जिनकी मुसलमानों और कांग्रेस में साख व धाक थी, 1958 में देहांत तक मुसलमानों और कांग्रेस के बीच पुल बने रहे. कांग्रेस व मुसलमानों में संबंध के मामले में जमीयतुल उलेमा हिंद की भी भूमिका ख़ास तौर से रही है. इसके अहम नेता मौलाना हुसैन अहमद मदनी और इनसे पूर्व मौलाना महमूद हसन अन्य मुस्लिम विद्वानों समेत आज़ादी की लड़ाई एवं आज़ादी पश्चात इस पार्टी से जुड़े रहे. कांग्रेस ने इनमें से कुछ को राज्यसभा की सदस्यता से भी सुशोभित किया. पर समय गुज़रने के साथ-साथ कांग्रेस-जमीयत संबंध मधुर नहीं रहे. इस समय जमीयत के दो घड़े हैं. एक की कमान दिवंगत मौलाना असद मदनी के सुपुत्र मौलाना महमूद मदनी के हाथ में है, तो दूसरे धड़े के मुखिया मौलाना असद मदनी के भाई मौलाना अरशद मदनी हैं. मौलाना महमूद मदनी कुछ समय पूर्व चौधरी अजीत सिंह की लोकदल के नज़रे करम पर राज्यसभा सदस्य बनाए गए थे. मौलाना अरशद मदनी कांग्रेस से निकट तो हैं, पर उनके धड़े का कोई ख़ास प्रभाव जनता के बीच नहीं है. इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कांग्रेस एवं मुसलमानों के बीच जमीयत अब पुल नहीं रही. जहां तक इंडियन यूनियन मुस्लिम लीग का मामला है, तो विभाजन पूर्व कांग्रेस-मुस्लिम लीग के कड़वे संबंध अब सुधर गए हैं और दोनों सहयोगी दल बने बैठे हैं. केरल में राज्य सरकार इन दोनों पार्टियों ने आपस में मिलकर कई बार बनाई है और केंद्र में 2004-09 की गठजोड़ सरकार में भी यह साथ कायम रहा. केरल की सतह पर तो यह बात है ही कि मुस्लिम लीग ने कांग्रेस एवं मुसलमानों को जोड़कर किस हद तक रखा है. वैसे 2009 के चुनाव के संबंध में जो ख़बरें आ रही हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि इस बार मिल्ली काउंसिल को छोड़कर अन्य मुस्लिम पार्टियों में से अधिकतर ने एलडीएफ का साथ दिया है. अन्य मुस्लिम पार्टियां इस समय कांग्रेस के पक्ष में नहीं लग रही हैं. मिल्ली काउंसिल के पूर्व 1964 में कांग्रेस नेता एवं पूर्व मंत्री डॉ. सैयद महमूद ने जवाहर लाल नेहरू के जीवनकाल में मुफ्ती अतीकुरहमान उसमानी एवं मौलाना मोहम्मद मुस्लिम के साथ मिलकर आल इंडिया मुस्लिम मजलिसे मुशावीरत को बनाकर कांग्रेस एवं मुसलमानों को फिर से जोड़ने की चेष्टा की थी, पर ऐसा लगता है कि इस समय स्थिति विपरीत है.

जहां तक कांग्रेस का सवाल है, तो मुसलमानों का इससे विभाजन पूर्व एवं पश्चात भी निकट संबंध रहा है. मौलाना आज़ाद और डॉ. सैयद महमूद जैसे मुस्लिम नेताओं के अलावा स्वयं जवाहरलाल नेहरू का आकर्षक व्यक्तित्व भी इस लगाव को बरकरार रखने के लिए काफ़ी था. लालबहादुर शास्त्री और इंदिरा गांधी के प्रधानमंत्रित्वकाल में भी मुसलमानों के लिहाज़ से कुल मिलाकर मामला ठीक ही रहा. वैसे 1967 में कुछ राज्यों में महामाया प्रसाद सिन्हा, कर्पूरी ठाकुर, चौधरी चरण सिंह जैसे नेताओं के नेतृत्व में ग़ैर कांग्रेसी सराकारों के गठन ने कांग्रेस के सिलसिले में मुसलमानों के जोशोख़रोश को अवश्य कम किया. जेपी आंदोलन से भी मुस्लिम बिल्कुल अलग-थलग नहीं रहे. इमरजेंसी की समाप्ति के बाद हुए आम चुनाव में दिल्ली की जामा मस्ज़िद के उस समय के शाही इमाम सैयद अब्दुल्लाह बुख़ारी और कुछ अन्य मुस्लिम संगठनों व विशिष्ट

व्यक्तियों ने बहुत दिलचस्पी ली. फिर जब जनता पार्टी सरकार गिर गई और 1980 में इंदिरा गांधी और उनके सुपुत्र संजय गांधी की कोशिशों से कांग्रेस ने फिर से कमान संभाला तो मुसलमान उसके साथ रहे. 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी का दौर आया. सब कुछ ठीक ही चल रहा था. इसी दौरान एक फरवरी 1986 को बाबरी मस्ज़िद का ताला खुला और फिर छह दिसंबर 1992 को केंद्र में नरसिंह राव की सरकार के रहते बाबरी मस्ज़िद ध्वंस कर दी गई.

हालांकि ऐसा नहीं था कि इन घटनाओं में भाजपा की भूमिका से कोई अवगत नहीं था, पर यह बात मुसलमान ही नहीं बहुत से ग़ैर मुस्लिमों के भी मन में रही कि यह सब कुछ केंद्र में कांग्रेस के सत्ता में रहते हुए हुआ. कहा जाता है कि मुसलमानों की उल्लेखनीय संख्या का मत प्रतिशत इन्हीं घटनाओं के बाद कम होना शुरू हुआ. इसी बीच कुछ राज्यों में कांग्रेस मुसलमानों का भरोसा वापस भी लेती रही. फिर 2004 आया, जब कांग्रेस ने यूपीए के तहत केंद्र में गठजोड़ सरकार बनाई और डॉ. मनमोहन सिंह प्रधानमंत्री बने. इससे पहले सोनिया गांधी ने कांग्रेस की अध्यक्षता संभाल ली थी. उन्हें स्वयं प्रधानमंत्री पद की जिम्मेदारी संभालने का अवसर मिला था, पर उन्होंने इसे डॉ. मनमोहन सिंह के हवाले कर दिया. इतना ही नहीं, इस दौरान कांग्रेस और यूपीए की कमान उन्हीं के पास रही. कांग्रेस की नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के समय में कुछ ऐसे कार्य अवश्य हुए जिसने मुसलमानों में कांग्रेस के प्रति फिर से भरोसा पैदा किया. पोटा की समाप्ति का मुसलमानों में विशेष रूप से स्वागत किया गया. वैसे यह अलग बात है कि बाद में देश के विभिन्न भागों में आतंकवाद के नाम पर कुछ मुस्लिम नौजवानों की गिरफ्तारी एवं बाटला हाउस इंकाउंटर जैसी घटनाओं से इसकी साख कुछ प्रभावित हुई, लेकिन मालेगांव एवं अन्य स्थानों पर हुए ब्लास्ट की साजिश में एक साध्वी और कार्यरत सैन्य अधिकारी की तफ्तीश के समाचारों से वह प्रभाव काफी हद तक समाप्त भी हो गया. मुसलमानों में भरोसा पैदा करने वाले कार्यों में राजिंदर सच्चर कमेटी एवं रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन और फिर उनकी रपटें भी हैं. रंगनाथ मिश्र आयोग की रपट अभी तक संसद में प्रस्तुत नहीं की जा सकी है, पर सच्चर रपट की रोशनी में मुसलमानों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए कुछ कोशिशें अवश्य शुरू हुईं. इनमें स्कॉलरशिप जैसी सुविधाएं भी हैं. इस सिलसिले में अब्दुल रहमान अंतुले के अधीन अल्पसंख्यक मंत्रालय और जस्टिस सुहैल अहमद सिद्दीकी की अध्यक्षता में अल्पसंख्यक शैक्षिक संस्थाओं से संबंधित विशिष्ट आयोग का गठन उल्लेखनीय है. वैसे मुसलमानों के समक्ष इसी दौरान अदालत के एक निर्णय के बाद अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के अल्पसंख्यक दर्जे की समस्या उठ खड़ी हुई.

कुल मिलाकर मतप्रतिशत कम होने के बावजूद, कांग्रेस के लिए फिर से जोशोख़रोश बढ़ता हुआ दिखाई पड़ रहा है. इसका प्रभाव इस बार भले सीटों पर न पड़े, लेकिन मतप्रतिशत पर पड़ना निश्चित है-ख़ास कर हिंदी भाषी राज्यों में. मिल रही सूचनाओं के अनुसार, हिंदी भाषी क्षेत्रों में कांग्रेस के बाद दूसरी बड़ी पार्टी भाजपा बनने वाली है. उसका अपना इतिहास है. स्वतंत्र भारत की प्रथम सरकार में वरिष्ठ मंत्री रहे डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने आरएसएस की सरपरस्ती में 1951 में भारतीय जनसंघ बनाई, जिसका इमरजेंसी के बाद 1977 में बनी जनता पार्टी में विलय हो गया. लेकिन जनता पार्टी के विभाजन के बाद इसने 1980 में भाजपा के रूप में पुनर्जन्म लिया. जनसंघ हो या भाजपा, इसे न तो मुसलमानों ने सामूहिक रूप से स्वीकार किया और न ही इसने मुसलमानों को अपनी ओर कभी आकर्षित किया. हालांकि इसमें आरिफ बेग, सिकंदर बख्त, आरिफ मोहम्मद खां, नजमा हेप्तुल्लाह, सैयद शाहनवाज़ हुसैन और मुख्तार अब्बास नक़वी जैसे गिनती के कुछ नेताओं की उपस्थिति रही है. चूंकि भाजपा संघ परिवार का ही अंग थी, इसलिए उसे इस विचारधारा के दूसरे संगठनों-शिवसेना, विश्व हिंदू परिषद आदि का समर्थन प्राप्त रहा. इसी दौरान विभिन्न रूपों में कम्यूनिस्ट एवं सोशलिस्ट पार्टियां भी सामने आईं. इन सभी में नेतृत्व एवं अनुयायियों यानी दोनों ही स्तरों पर मुसलमान शामिल रहे. इस प्रकार मुसलमानों का माकपा, भाकपा, भाकपा (माले), एस एस पी, आर एस पी और फारवर्ड ब्लॉक से संबंध रहा. आज भी जिन राज्यों में लेफ्ट फ्रंट की सरकारें हैं, वहां मुसलमानों का समर्थन उन्हें कमोबेश प्राप्त है. मुसलमानों को इनसे जहां यह संतुष्टि रही कि उन्होंने सांप्रदायिकता व सांप्रदायिक तत्वों का हमेशा विरोध किया, वहीं उन्हें यह शिकायत भी रही कि इनके शासन वाले राज्यों में मुसलमानों की शैक्षिक, आर्थिक व सामाजिक स्थिति बहुत दयनीय रही. वाम मोर्चे के शासन वाले राज्यों में विकास की दौड़ में मुसलमानों के पिछड़ने का पता सच्चर कमेटी की रपट से भी होता है.वैसे चक्रवती राजगोपालाचार्य ने मीनू मसानी और आचार्य जे बी कृपालानी के साथ मिलकर स्वतंत्र पार्टी बनाई थी. उनसे मुसलमानों को विशेष सहानुभूति भी रही. बहरहाल, विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय बुनियादों पर भी कई दल बने. इममें डीके, डीएमके, एडीएमके, टीडीपी, बीकेडी, राजद, सपा, लोकदल, जनता दल (सेकुलर) जनता दल (यू), बसपा, लोजपा, जेएमएम, एनसीपी प्रमुख हैं. इन क्षेत्रीय पार्टियों से भी मुसलमान संबंधित रहे. इनमें से कुछ पार्टियां तो मुसलमानों के समर्थन पर ही फलती-फूलती भी रहीं. लेकिन अब मुसलमानों का वोट बैंक इनसे धीरे-धीरे दूर होता जा रहा है. शायद यही कारण है कि राजनीतिक पार्टियों पर से भरोसा कम होने पर मुसलमानों में उदासीनता बढ़ती जा रही है और इसका प्रभाव मतप्रतिशत पर भी पड़ने लगा है.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

सभी फोटो-*प्रभात पाण्डेय*

कैसा होगा नई सरकार का चेहरा

पंद्रहवीं लोकसभा का चुनाव हो चुका है. जनता का फैसला आ चुका है. अब चुनाव अगले प्रधानमंत्री का होना है. अब सबकी नज़र इस पर टिकी है कि कौन-कौन से नेता कैबिनेट मंत्री बनेंगे, लेकिन इस आलेख को लिखे जाने तक चुनाव परिणाम नहीं आए थे. प्रधानमंत्री का चुनाव नहीं हुआ था और न ही कैबिनेट मंत्रियों के नाम पर चर्चा हुई थी. *चौथी दुनिया* के अलग-अलग संवाददाताओं ने राजनीतिक दलों को टटोला, उनके नज़रिए और नेताओं की आशाओं को पढ़ने की कोशिश की. हम अपने संवाददाताओं से मिली जानकारियों को आधार बना कर अलग-अलग राजनीतिक गठबंधनों के संभावित प्रधानमंत्री और कैबिनेट मंत्रियों की सूची पेश कर रहे हैं. गठबंधन की मजबूरी कहें या नेताओं में बड़े से बड़े पदों को हथियाने की कोशिश, इस बार इतना तय है कि कैबिनेट मंत्रियों की संख्या सर्वाधिक होने वाली है.

मंत्रालयों का बंटवारा राजनीतिक दलों के सीटों के अनुपात पर होगा. सरकार किसी भी गठबंधन की हो, ज़्यादा महत्वपूर्ण मंत्रालय उन्हीं दलों को मिलेंगे जिनके पास ज़्यादा सांसद होंगे. एनडीए या यूपीए गठबंधन की सरकार में प्रधानमंत्री बीजेपी या कांग्रेस के होंगे. अगर एनडीए या यूपीए सरकार बनाने में विफल रहा तो तीसरे मोर्चे की सरकार बनेगी. तीसरे मोर्चे की सरकार बनाने के लिए काफी जद्दोजहद करनी पड़ेगी. यूपीए और एनडीए में बिखराव होगा और मुलायम सिंह यादव, रामविलास पासवान और लालू यादव के चौथे मोर्चे को भी साथ लेना होगा.

इतना ही नहीं, इस बार कई राज्यों की तरह सांसदों को होटल में बंद किया जाएगा या फिर उन्हें किसी एकांत जगहों पर ले जाया जाएगा. छोटी पार्टियों के बिखरने की संभावना बनी रहेगी और सांसदों की ख़रीद-बिक्री का नया कीर्तिमान स्थापित होगा.

एनडीए की सरकार बनी तो ऐसा हो सकता है मंत्रिमंडल

अभी तक के रुझानों से यही लगता है कि एनडीए को बहुमत नहीं मिलने वाला है. एनडीए को सरकार बनाने के लिए दूसरे दलों की मदद की ज़रूरत पड़ेगी. नवीन पटनायक, जयललिता, चंद्रबाबू नायडू और ममता बनर्जी की पार्टी की सीटें और उनकी रणनीति ही तय करेगी केंद्र में एनडीए की सरकार बनेगी या नहीं. अगर एनडीए 272 के जादुई आंकड़े को पार कर पाया तो एनडीए के मंत्रिमंडल का स्वरूप कुछ ऐसा होगा.

प्रधानमंत्री-लालकृष्ण आडवाणी, गृह मंत्री-अरुण जेटली, मानव संसाधन-मुरली मनोहर जोशी, विदेश मंत्री-यशवंत सिन्हा, वित्त मंत्री-जसवंत सिंह, पेट्रोलियम मंत्री-सुषमा स्वराज, कृषि मंत्री-राजनाथ सिंह होंगे. इनके अलावा रविशंकर, राजीव प्रताप रूडी, शत्रुघ्न सिन्हा, शाहनवाज, अरुण शौरी, चंदन मित्रा, अनंत कुमार और नकवी भी कैबिनेट मंत्री बनेंगे. इस बार एनडीए का सूचना प्रसारण मंत्री एक वरिष्ठ पत्रकार को बनाया जाएगा जो इस वक्त एनडीए के साथ नहीं है. इनके अलावा बीजेपी की सहयोगी पार्टियों में शरद यादव, शिवानंद तिवारी, सुखबीर सिंह बादल, मनोहर जोशी आदि प्रमुख नेताओं को भी मंत्री बनाया जाएगा. इसके साथ ही एनडीए को समर्थन देने वाली पार्टियों के कुछ अन्य नेताओं को भी शामिल करना मजबूरी होगी.

अगर यूपीए सरकार बनी तो मंत्रिमंडल में होगा भारी बदलाव

इस बार यूपीए सरकार का गठन पिछले बार से कहीं अधिक पेचीदा होगा. अगर कांग्रेस की सीटें बढ़ती हैं तो यूपीए सरकार बन सकती है. लेकिन इस बार वाममोर्चा और मुलायम सिंह यादव, रामविलास पासवान और लालू यादव के चौथे मोर्चे ने समीकरण बदल दिए हैं. अगर यूपीए की सरकार बनती है तो कांग्रेस का प्रधानमंत्री कौन होगा, इस पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता है. मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री की कुर्सी पर दोबारा बैठने की उम्मीद कम नज़र आ रही है. ऐसे में गांधी परिवार से प्रधानमंत्री के लिए सोनिया गांधी, प्रियंका गांधी या राहुल गांधी में से किसी एक का नाम आगे आ सकता है. अगर यूपीए का प्रधानमंत्री गांधी परिवार के बाहर से बना, तो सुशील कुमार शिंदे की संभावना सबसे अधिक है. पिछले पांच साल से देश में यूपीए की सरकार चल रही है. यूपीए सरकार के मंत्रियों का अपने-अपने मंत्रालयों में फिर से वापस आने का दावा मजबूत हो जाता है. उनका दावा इसलिए मजबूत होता है, क्योंकि सरकार उन्हीं के बढ़िया कामों की वजह से दोबारा चुनी गई होगी. इस बार यूपीए के सरकार में दो-तीन राज्य मंत्रियों को कैबिनेट मंत्री का दर्जा मिलेगा. आनंद शर्मा, ज्योतिरादित्य सिंधिया, जितिन प्रसाद की इस बार कैबिनेट मंत्री के रूप में तरक्की हो सकती है. कुछ ऐसे कैबिनेट मंत्री भी होंगे, जिनकी कुर्सी जा सकती है. साथ ही अगर कांग्रेस की सीटें कम होती हैं, तो कुछ महत्वपूर्ण मंत्रालयों को सहयोगी दलों को देना पड़ेगा. प्रधानमंत्री और कैबिनेट में चार-पांच बदलावों के अलावा सरकार का चेहरा पहले की तरह ही रहेगा. यूपीए की कैबिनेट में कपिल सिब्बल, पी. चिदंबरम, एके एंटनी, एआर अंतुले, अर्जुन सिंह, जयपाल रेड्डी, शंकर सिंह वाघेला, एचआर भारद्वाज, वायलार रवि, मणिशंकर अय्यर, जयराम रमेश, अंबिका सोनी, ऑस्कर फर्नांडीस, आनंद शर्मा, श्रीप्रकाश जायसवाल, जितिन प्रसाद और ज्योतिरादित्य सिंधिया तो होंगे ही, इनके अलावा सहयोगी पार्टियों से शरद पवार, प्रफुल्ल पटेल, टीआर बालु, दयानिधि मारन, ममता बनर्जी, लालू यादव, रामविलास पासवान भी महत्वपूर्ण कैबिनेट मंत्री होंगे. लेकिन हो सकता है कि इन लोगों के मंत्रालयों में बदलाव हो. यह बदलाव पंद्रहवीं लोकसभा में इनके सांसदों की संख्या पर निर्भर करेगा.

सचमुच बनी, तो ऐसी होगी तीसरे मोर्चे की सरकार

अगर कांग्रेस और बीजेपी की सीटें कम हो जाती हैं तो देश पर शासन करने की उनकी दावेदारी कम हो जाएगी. देश में एक ग़ैर कांग्रेस-ग़ैर भाजपा सरकार बनेगी, जिसके मुख्य सूत्रधार सीपीएम के प्रकाश करात होंगे. लेकिन तीसरे मोर्चे के पास इतनी सीटें नहीं हैं कि वह अपने दम पर सरकार बना सके. उसे दूसरे दलों की ज़रूरत पड़ेगी. इनकी सरकार के लिए यूपीए और एनडीए में बिखराव जरूरी है.

तीसरे मोर्चे की सरकार अगर बनती है तो गठबंधन राजनीति में अभूतपूर्व उलटफेर देखने को मिलेगा. अंतिम समय तक यही पता नहीं चल पाएगा कि कौन किसके साथ है. अब तक तीसरे मोर्चे में शामिल और ख़ुद को प्रधानमंत्री का दावेदार बताने वाली मायावती की छुट्टी हो सकती है. ऐसा इसलिए होगा क्योंकि चौथे मोर्चे के पास मायावती से ज़्यादा सीटें होंगी. मुलायम सिंह और रामविलास पासवान किसी भी सूरत में मायावती का समर्थन नहीं करेंगे.

सत्ता का अंकगणित मायावती पर भारी पड़ेगा और उन्हें फिलहाल उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री की कुर्सी से ही संतोष करना पडेगा. तीसरे मोर्चे को कांग्रेस के समर्थन की ज़रूरत होगी. ऐसे हालात में तीसरे मोर्चे की सरकार की सूरत कुछ ऐसी होगी. तीसरे मोर्चे में प्रधानमंत्री के चार उम्मीदवार बचेंगे-एबी वर्धन, शरद पवार, मुलायम सिंह यादव और जयललिता. प्रधानमंत्री वही बनेगा जो अपने पक्ष में सबसे अधिक समर्थन जुटा पाएगा. तीसरे मोर्चे की सरकार में कैबिनेट मंत्रियों में लालू यादव, रामविलास पासवान, सीताराम येचुरी, शरद पवार, वृंदा करात, डी राजा, और प्रफुल्ल पटेल होंगे. इनके अलावा इस सरकार को समर्थन देने वाली पार्टियों के कुछ अन्य नेता भी कैबिनेट में नज़र आएंगे.

मनीष कुमार
manish.chauthiduniya@gmail.com

क्षेत्रीय दलों के उभार के लिए कांग्रेस-भाजपा ही जिम्मेदार

सुरेंद्र किशोर

देश में क्षेत्रीय दलों के उभार के लिए और कोई नहीं, बल्कि खुद कांग्रेस और भाजपा ही जिम्मेदार रही हैं. कांग्रेस ने आज़ादी के बाद से ही सामाजिक समीकरण और सामाजिक न्याय का ध्यान नहीं रखा. यानी, उसने सत्ता के अहंकार में देश के विभिन्न समुदायों और क्षेत्रों को उनका वाज़िब हक़ नहीं दिया. दूसरी ओर, भाजपा ने अपने ही चाल, चरित्र और चिंतन के दावे को भुला कर अपनी विशिष्टता खो दी. इस तरह समय बीतने के साथ भाजपा, कांग्रेस की एक कमजोर कार्बन कॉपी बन कर रह गई.

नतीजतन क्षेत्रीय अस्मिता और जातीय आधिकारिता पर आधारित दलों को जनता से ताक़त मिली. पिछड़े क्षेत्रों और उपेक्षित जातीय समूहों ने देखा कि जब राष्ट्रीय दल भी सत्ता व निजी फायदे के लिए देशहित के साथ समझौता ही कर रहे हैं तो उन्होंने क्षेत्रीय हितों और जातीय वर्चस्व वाले दलों से अपनी तकदीर जोड़ दी.

कांग्रेस या फिर भाजपा के सहयोग से ही कोई न कोई सरकार इस बार भी केंद्र में बनेगी. यदि सत्ता में आने के बाद इस बार भी कांग्रेस ने सामाजिक न्याय और क्षेत्रीय संतुलन का ध्यान नहीं रखा तो क्षेत्रीय दलों को बढ़ते जाने से रोका नहीं जा सकता. भाजपा ने 1998 में केंद्र में सत्ता संभालने से पहले जनता के समक्ष यह प्रदर्शित किया था कि वह कांग्रेस से अलग तरह की पार्टी है. भ्रष्टाचार के प्रति वह कठोर है, पर अपने छह साल के शासनकाल में वह न तो भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ कड़ा कदम उठा सकी और न ही राजनीति के अपराधीकरण के मामले में खुद को कुछ क्षेत्रीय दलों से बेहतर साबित कर सकी. दूसरी ओर, सत्ता में कमज़ोर जातियों को हिस्सा देने के मामले में भी भाजपा, कांग्रेस से खुद को बेहतर साबित नहीं कर सकी. दूसरी ओर क्षेत्रीय दलों ने अपने उन क्षेत्रों और जातियों का खुल कर कल्याण किया, कल्याण करने का भरोसा दिया या फिर कल्याण का ढोंग किया, जिनसे उन्हें राजनीतिक ताक़त मिली. इस बार केंद्र में सत्ता में आने के बाद इन ग़लतियों को सुधारने का अवसर कांग्रेस या भाजपा को मिलेगा. उनका सुधरना और राष्ट्रीय दलों का मजबूत होना देशहित में जरूरी भी है.

कांग्रेस सिमट रही है और भाजपा का विकास रुक गया लगता है. ऐसा क्यों हुआ? इसके मूल कारण हैं कि कांग्रेस ने गांधी के *अंतिम व्यक्ति* के सिद्धांत को तिलांजलि दे दी और चाल, चरित्र और चिंतन के क्षेत्र में भाजपा का समय के साथ पतन होने लगा. दूसरी ओर, अधिकतर क्षेत्रीय दलों को अपने निजी हित साधने होते हैं. कोई जाति के नाम पर दबाव बनाता है तो किसी को अपने व्यापारी दोस्तों के हितों की रक्षा करनी है. पद, पैसा और परिवार उनकी प्राथमिकताएं हैं जबकि देश के सामने आज कई कठिन समस्याएं मुंह बाए खड़ी हैं. उम्मीद की जाती है कि सत्ता में आने के बाद कांग्रेस और भाजपा अधिकतर मामलों में अन्य दलों की अपेक्षा हमेशा ही व्यापक देशहित में कोई कदम उठाएंगे, यदि उन पर छोटे-छोटे स्वार्थों के आगे झुकने की मजबूरी नहीं हो. पर खुद में सुधार करने से पहले इन दो राष्ट्रीय दलों के लिए यह जरूरी है कि वे अपनी कुछ प्रमुख ग़लतियों को एक बार याद तो कर लें. तभी तो वे उन्हें सुधार भी सकेंगे, यदि वे सुधारना चाहें.

कांग्रेस की ग़लतियां खुद कांग्रेसी नेताओं के ही शब्दों में सुनिए. 1969 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने नारा दिया-ग़रीबी हटाओ. यानी 22 साल की आज़ादी के बावजूद तब तक इस देश की ग़रीबी नहीं हटी थी. किसी देश के लिए 22 साल कम नहीं होते. तब जबकि योजनाबद्ध विकास का ढोल पीटा जा रहा हो. पंचवर्षीय योजनाओं को कभी रामवाण बताया जा रहा था, पर भ्रष्टाचार ने देश को खोखला कर दिया और इस कारण ग़रीबी बनी रही. इसीलिए उसे अपनी राजनीति का मुख्य नारा बनाया इंदिरा जी ने. ग़रीबी क्यों नहीं हटी? इसका मुख्य कारण यह रहा कि विकास और कल्याण के मद के अधिकांश पैसे बिचौलिए लूटते रहे और सरकारें देखती रहीं. हालांकि आज़ादी के तत्काल बाद तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि *कालाबाज़ारियों को सबसे नज़दीक के लैम्प पोस्ट से लटका दिया जाना चाहिए.* उन्हीं दिनों चीन ने भ्रष्टाचारियों के लिए अपने यहां फांसी की सजा का कानूनी प्रावधान कर दिया, पर भारत में नेहरू की इस इच्छा का पालन नहीं हो सका. खुद नेहरू भी समय बीतने के साथ भ्रष्टाचार के प्रति सहिष्णु होते गए. हालांकि खुद उन पर भ्रष्टाचार के कोई गंभीर आरोप नहीं लगे. सिर्फ अपनी पुत्री को राजनीति में आगे बढ़ाने की परोक्ष व प्रत्यक्ष कोशिश में वह जरूर लगे रहे. बाद में सत्ता में आने के बाद उनकी पुत्री ने भ्रष्टाचार को यह कहते हुए संस्थागत रूप दे दिया कि यह तो विश्वव्यापी फेनोमेना है. भ्रष्टाचार के कारण इस देश में ग़रीबी बढ़ी. जन असंतोष बढ़ा. यदि आज़ादी के तत्काल बाद की केंद्र व राज्य सरकारों ने सत्ता में विभिन्न जातीय समूहों को संभव भागीदारी दी होती तो क्षेत्रीय दलों को कमजोर लोगों में बढ़ रहे असंतोष का जातीय आधार पर गोलबंद होकर लाभ उठाने का मौका नहीं मिलता. यह कोई अकारण नहीं है कि अधिकतर क्षेत्रीय दलों के समर्थन का मुख्य आधार जातीय ही है. ये सब जातियां आज़ादी के तत्काल बाद के वर्षों में कमोवेश कांग्रेस के ही साथ थीं. उनका कांग्रेस से मोहभंग क्यों हुआ? इसकी पड़ताल कर इस दोष के निवारण से कांग्रेस को एक बार फिर मजबूत होने में सुविधा होगी. इस संबंध में मात्र एक आंकड़ा महवपूर्ण होगा. 1990 में उपलब्ध एक आंकड़े के अनुसार केंद्र सरकार के नौ मंत्रालयों में पिछड़ी जाति का एक भी अधिकारी तैनात नहीं था. अन्य छह मंत्रालयों में पिछड़ी जाति का मात्र एक-एक अफसर तैनात था. अन्य मंत्रालयों में भी इस मामले में अच्छी स्थिति नहीं थी. इसके बावजूद, जब वी.पी.सिंह की सरकार ने मंडल आयोग की सिफारिशें लागू कीं तो उसे कांग्रेस और भाजपा ने मन से स्वीकार नहीं किया. उन्हें आधे मन से तब स्वीकार करना पड़ा जब 1993 में सुप्रीम कोर्ट ने इन सिफारिशों पर मुहर लगा दी. तब तक तो पिछड़ों के एक बड़े हिस्से ने इन राष्ट्रीय दलों का साथ छोड़ दिया था. इस तबके ने क्षेत्रीय दलों का दामन पकड़ लिया, जिन दलों का राजनीतिक नैतिकता और शुचिता से कोई खास संबंध नहीं रहा है. यह देश के लिए नुकसानदेह साबित हो रहा है.

सत्ता में कमज़ोर जातियों को हिस्सा देने के मामले में भी भाजपा, कांग्रेस से ख़ुद को बेहतर साबित नहीं कर सकी. दूसरी ओर क्षेत्रीय दलों ने अपने उन क्षेत्रों और जातियों का खुल कर कल्याण किया, कल्याण करने का भरोसा दिया या फिर कल्याण का ढोंग किया, जिनसे उन्हें राजनीतिक ताक़त मिली.

साथ ही, राजनीतिक पदों के मामले में भी सवर्णबहुल कांग्रेस और भाजपा ने कमज़ोर वर्ग के साथ कम ही न्याय किया. यहां तक कि आज़ादी के तत्काल बाद के केंद्रीय मंत्रिमंडल में राजपूत और यादव जातियों का एक भी सदस्य कैबिनेट मंत्री नहीं बनाया गया था. शासन के अन्य क्षेत्रों में भी लगभग यही हाल रहा. यहां तक कि 1977 की मोरारजी देसाई सरकार में भी कोई यादव या राजपूत कैबिनेट मंत्री नहीं बनाया गया, जबकि जनसंघ उसका एक मजबूत घटक था. नतीजतन क्षेत्रीय दल मजबूत हुए और अब सवर्ण अपने लिए आरक्षण मांगने पर मजबूर हो रहे हैं और क्षेत्रीय दलों के पिछड़े समुदाय से आने वाले नेतागण सवर्णों को आरक्षण देने का आश्वासन दे रहे हैं. यानी कुछ ही दशकों में गंगा उलटी दिशा में बहने लगी है. इसके लिए कौन जिम्मेदार है, यह समझना उनके लिए कठिन नहीं है जो निष्पक्ष ढंग से चीज़ों को देखते हैं. राजीव गांधी ने सत्ता में आने के बाद कहा था कि दिल्ली से जो सौ पैसे चलते हैं, उनमें से सिर्फ 15 पैसे ही जनता तक पहुंचते हैं. इस स्थिति को क्या इस बार सत्ता में आने के बाद कांग्रेस बदलेगी? क्योंकि यह समस्या मुख्यत: कांग्रेस सरकारों की ही देन है. गत साल मार्च में कांग्रेस के महासचिव राहुल गांधी ने भुवनेश्वर में कहा कि *कांग्रेस में आंतरिक लोकतंत्र नहीं है, जबकि इस देश में लोकतंत्र है.*

यदि नेहरू, इंदिरा गांधी, राजीव गांधी और राहुल गांधी की उपर्युक्त टिप्पणियों पर भी सत्ता में आने के बाद कांग्रेस ईमानदारी से अमल करे तो उसे एक बार फिर जनता का आज की अपेक्षा अधिक समर्थन मिल सकता है. कई क्षेत्रीय दलों की संकुचित नीतियों को देखकर देश के अनेक लोग एक बार फिर कांग्रेस की ओर उम्मीद भरी नज़रों से देखने लगे हैं. क्योंकि कुछ अपवादों को छोड़कर अब भी सबसे अधिक लोक-लाज कांग्रेस में ही है. एक जूता चला और दो उम्मीदवार बदल गए. दूसरी ओर, भाजपा बड़े गर्व से यह दावा करती थी कि वह अन्य दलों से अलग है. उसका चाल, चरित्र और चिंतन बेहतर है, पर केंद्र में सत्ता में रहते हुए उसने अपने ही कई प्रमुख वायदे भुला दिए. पहली बड़ी राजनीतिक ग़लती भाजपा ने 1997 के अक्तूबर में की जब उसने उत्तर प्रदेश में अपनी अल्पमत राज्य सरकार को बचाने के लिए राज्य के कई माफिया और बाहुबलियों को मंत्री बना दिया और अटल बिहारी वाजपेयी ने भी यह कह कर तब उस फैसले का बचाव किया कि *हमने तो सिर्फ उन्हें मंत्री बनाया है, जिताया तो उन्हें जनता ने ही है.* फिर केंद्र में भाजपानीत सरकार ने केंद्रीय सतर्कता आयोग को एक सदस्यीय की जगह तीन सदस्यीय बना दिया, ताकि अटल सरकार के कुछ महत्वपूर्ण मंत्रियों को बचाया जा सके. 2000 में केंद्रीय सतर्कता आयुक्त एन. बिट्ठल ने सीबीआई से कहा था कि वह चार केंद्रीय मंत्रियों की संपत्ति की जांच करे, जिन पर हवाला के पैसे लेने का आरोप लगा था. इसके बाद ही अटल सरकार ने सतर्कता आयोग को तीन सदस्यीय बना दिया, ताकि कोई एक बिट्ठल फिर ऐसी कोई हिमाकत न कर सके. यह काम उस भाजपा ने किया जो कांग्रेस सरकारों पर लगातार भ्रष्टाचार के आरोप लगाती रही. आज भी भाजपा क्वात्रोची को क्लीन चिट देने पर चिल्ला रही है, पर उसे अपनी ही कुछ करतूतें याद नहीं. तब उस काम से भाजपा की जनता में साख घटी थी.

एक और उदाहरण है. सुप्रीम कोर्ट ने दो मई 2002 को चुनाव आयोग से कहा कि वह उम्मीदवारों के बारे में दिशा-निर्देश जारी करे. दिशा-निर्देश यह कि उम्मीदवार अपने शपथ पत्र के साथ संपत्ति, आपराधिक रिकार्ड और शैक्षणिक योग्यता का विवरण दें. आयोग ने दिशा-निर्देश जारी कर दिया. उस निर्देश का अटल सरकार ने विरोध कर दिया. उस निर्देश को विफल करने के लिए जन प्रतिनिधित्व कानून में संशोधन कर दिया गया, पर सुप्रीम कोर्ट ने 2003 में उस संशोधन को ही रद्द कर दिया. यानी आज जो उम्मीदवार अपने बारे में ब्योरा देते हैं, वह भाजपा की इच्छा के ख़िलाफ़ काम है. इतना ही नहीं, इस तरह के कई अन्य उदाहरण भी सामने आए जब अपने ही चाल, चरित्र और चिंतन की कसौटी पर भाजपाई खरे नहीं उतरे. राष्ट्रीय दलों की गई साख पुन: लौटे, यह इस संकटग्रस्त देश के लिए जरूरी है. केंद्र में एक ऐसी सरकार के गठन के लिए भी जरूरी है जिसे कुछ क्षत्रपों के भयादोहन का शिकार नहीं होना पड़े.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

क्यों उदासीन

अगर यह कहें कि भारतीय समाज में बदलाव की राजनीति हाशिए पर खिसक चुकी है और भारतीय मतदाता लोकतांत्रिक प्रक्रिया से मायूस होने लगे हैं, तो ग़लत नहीं होगा. फिलहाल देश के जो राजनैतिक हालात हैं उसमें ऐसा होना लाज़िमी भी है. राजनेताओं के रोज़ बदलते चेहरे, चरित्र और हुक्मरानों की लापरवाही ने लोकतंत्र की अवधारणा पर कुठाराघात किया है. लोगबाग भ्रमित होने लगे हैं. आम लोगों की समस्याएं, उनकी

घट रहा है लोकतंत्र के प्रति विश्वास

इस आम चुनाव में लोकतंत्र के प्रति विश्वास का लगातार घटना साफ दिखता है. इस समय जिस उत्साह और बड़े पैमाने पर मतदाताओं को आगे आना चाहिए था, जिस बड़ी संख्या में युवकों को अपनी नियति बदलने की पहल करनी चाहिए थी, वह नहीं हुआ. बड़े पैमाने पर देश में जो बड़ी चुनौतियां हैं, वे और दूसरे गंभीर व बुनियादी सवाल राजनीतिक एजेंडे पर आने चाहिए थे, जो नहीं आए. सबसे ख़राब चीज़ जो दिखी, वह यह कि बिल्कुल घटिया स्तर पर आकर बड़े नेता एक-दूसरे पर आरोप लगाते रहे. गाली-गलौच वाली भाषा का इस्तेमाल करते रहे. शिष्टता और मर्यादा तक को खो दिया. ऐसे में जनता को लगने लगा है कि ये देश की रहनुमाई क्या करेंगे? कम मतदान प्रतिशत की वजह भी यही है कि व्यवस्था से लोगों का विश्वास उठता जा रहा है. लोग मानने लगे हैं कि व्यवस्था बिल्कुल भ्रष्ट हो गई है. सारे नेता कमोबेश एक ही हैं, जिसे इस चुनाव ने प्रमाणित भी कर दिया है. कल तक जो कांग्रेस में थे, भाजपा में चले गए. जो भाजपा में थे वे कांग्रेस से मिल गए. कल्याण सिंह, मुलायम सिंह से मिल गए. कहीं कोई मर्यादा बची नहीं रह गई. न तो नेताओं में विचारों के प्रति कोई आग्रह है, न ही नेताओं में कोई वैचारिक प्रतिबद्धता है और न ही कोई चरित्र है. नेता विक्रय की वस्तु हो गए हैं. इसका पूरा प्रकरण पिछली लोकसभा में सरकार बचाने के लिए देखा जा चुका है. नेताओं का चरित्र पूरी तरह से जनता के सामने आ गया है. इस वजह से लोगों में मतदान के प्रति स्वाभाविक इच्छा ख़त्म हो गई है. जैसी कारगर व्यवस्था लोकतंत्र के अंदर होनी चाहिए, वह अब मौजूद नहीं है. हालांकि इसके लिए लोकतंत्र को कोसना ग़लत होगा, बल्कि जो संस्थाएं इस व्यवस्था और आचरण की कर्णधार हैं-जैसे राजनैतिक दल, संसद, विधानमंडल- इनका पतन साफ दिखता है. भारतीय लोकतंत्र को कमज़ोर करने का काम भारत के सत्ताधारियों ने किया है. सत्ता की होड़ ही भारत को अंधेरे भविष्य की ओर धकेल रही है. उम्मीद है कि अगली सरकार वोटबैंक की राजनीति से उठकर काम करेगी. वह देश के आगे जो चुनौतियां हैं, उन पर ग़ौर करे. जैसे-आतंकवाद का संकट इस समय देश पर छाया है, तालिबान दस्तक दे रहा है, श्रीलंका, बांग्लादेश, नेपाल, चीन में भारत के ख़िलाफ़ माहौल है, उन पर ग़ौर करे. कम से कम भारत के हित की बात सोचे. नैतिक बनने की कोशिश करे. स्विस बैंकों में जमा काला धन भारत लाकर देश को मजबूत बनाए. भ्रष्टाचार को दरकिनार करे. क्षेत्रवाद को दूर करके विकास के बारे में सोचे. जनता ने चुनावों से बहुत सीखा है. दरअसल जनता नेताओं से एक कदम आगे है, क्योंकि जिस तरह से लोगों ने वोट डालने में उदासीनता दिखाई वह इस बात का प्रमाण है कि वे नेताओं से दूर रहना चाहते हैं. जनता को अभी प्रतिरोध के तरीके सीखने हैं. जनता ने जो नहीं सीखा है वह यह कि इस व्यवस्था में अभी भी जब देश के सामने बड़ी-बड़ी चुनौतियां हैं तब भी नेता क्षेत्रीय, जातीय राजनीति करके वोट मांगते हैं, उन्हें कैसे जवाब दें. उनके ख़िलाफ़ जो जनजागरूकता, जनप्रतिरोध होना चाहिए वह जनता को अभी सीखना है.

हरिवंश
वरिष्ठ पत्रकार

ज़रा ग़ौर करें...

अब बात करें उनकी जो वास्तव में आम लोग हैं. जो रोज़ाना ही परेशानियों से दो चार होते हैं. दो वक़्त की रोटी जुटाना जिनकी सबसे बड़ी दिक्कतों में शुमार है. सुबह से शाम तक ये तमाम तरह की समस्याओं से जूझते हैं. धक्के खाते हैं. मेहनतकश होने के बावज़ूद अपमानित होते हैं. फिर भी इनकी आस नहीं छूटती. भरोसा नहीं टूटता. यह वर्ग ऐसा है जो वोट देने के लिए सबसे ज़्यादा उत्साहित रहता है. फिर भी राजनेताओं से सबसे ज़्यादा छला भी यही जाता है. इस बार भी मेहनत-मज़दूरी करने वालों ने बढ़-चढ़ कर वोट डाले हैं.

पर राजनेताओं के झूठ से यह वर्ग इस बार भी मायूस लग रहा है. मेरठ के रहने वाले आसिफ कनॉट प्लेस में पंक्चर लगाने का काम करते हैं. आसिफ कहते हैं कि वोट तो उन्होंने दिया है पर उन्हें पता है कि इससे कोई बदलाव नहीं आने वाला. उन्हें नेताओं से कोई उम्मीद नहीं है. तो फिर वोट क्यों दिया? यह पूछने पर वह कहते हैं कि हमेशा से देते आए हैं, इसलिए दे दिया. अधिकार है वोट देना, इसलिए इस्तेमाल कर लिया. पर उन्हें पता है कि उनका वोट जाया जाएगा. सरकार किसी की बने,

वीरेंद्र यादव

ताड़ से गिरे, खजूर पर अटके

चुनाव को लेकर जो पहली बात मेरे मन में आती है, वह चुनाव प्रचार की प्रक्रिया से जुड़ी है. मुझे लगता है कि चुनाव प्रचार तीन स्तर पर होने चाहिए थे. गांवों में पंचायत भवन पर एकसाथ चुनाव प्रचार होना चाहिए था, गांव से जुड़े मुद्दों पर बहस होनी चाहिए थी. छोटे शहरों के नगर भवनों में, बड़े शहर या महानगरों में सामुदायिक भवन या कम्यूनिटी सेंटर में ऐसी बहस और प्रचार होने चाहिए. हमारे देश में चुनाव प्रचार में गलत ढंग से पैसों का इस्तेमाल होता है. बड़े शहरों में यह भले ही पता नहीं चलता हो पर छोटे शहरों में वोटरों को तरह-तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं. शराब की बोतलें बंटती है. मेरा मानना है कि डोर-टू-डोर प्रचार यानी प्रत्यक्ष प्रचार की अनुमति नहीं दी जाए, क्योंकि अभी हमारे नेता इस लायक नहीं हुए कि उन्हें प्रत्यक्ष प्रचार की अनुमति दी जाए. साथ ही एक बार चुनने के बाद वापस बुलाने (रीकॉल) के अधिकार भी होने चाहिए. इसके अलावा सभी प्रत्याशियों में अगर कोई सही ऑप्शन नहीं हो, तो चुनाव में इनमें से कोई नहीं (नन ऑफ दीज़) का ऑप्शन भी होना चाहिए था. इसमें अगर पचास प्रतिशत से ज़्यादा *नन ऑफ दीज़* के विकल्प को चुनें तो चुनाव रद्द कर देना चाहिए. अभी तो स्थिति यह है कि किसी को चुनने में ऐसा लगता है कि मानो ताड़ से गिरे और खजूर पर अटके. मतदान के कम प्रतिशत की वजह भी यही है. विकल्प इतने ख़राब हैं कि कोई क्यों मतदान करने जाए. क्षेत्र में पांच साल तक कोई जनप्रतिनिधि चेहरा नहीं दिखलाता. ऐसे में कोई क्या मतदान करे. उन्हें लगता है कि एक बार फिर गंदगी लाने से क्या फायदा. मुझे लगता है कि उन्हें वापस बुलाने के लिए रिकॉल बूथ बनाने ज़रूरी हैं. जनप्रतिनिधियों को लगना चाहिए कि अच्छा काम न करने पर वापस बुला लिया जा सकता है. हर सामूहिक भवन में नेताओं के कार्यों की समीक्षा हो, रिकॉल बूथ से लोगों को विचार संग्रह कर भेजा जाए, राय ली जाए. और अगर राय नहीं मानी जाए, कोई जनप्रतिनिधि काम न करे तो स्कूलों की तरह उन्हें ब्लैक कार्ड दे दिया जाए. इस तरह से प्रतिरोध दर्ज करने पर उन लोगों पर अच्छा असर होगा, जो पांच साल के लिए कुर्सी से चिपक कर बैठ जाते हैं और कोई काम नहीं करते. जब हर वक्त उनके सिर पर तलवार लटकी रहेगी तो वे काम करने लगेंगे. जहां तक नई सरकार के स्वरूप की बात है, तो पंद्रहवीं लोकसभा में युवाओं का बाहुल्य होगा, ऐसा कहा जा रहा है. मुझे लगता है कि युवकों की ऊर्जा को हमेशा प्रज्ञा से संबद्ध होना चाहिए. युवाओं को वैसे अनुभवी जन, जो सत्ता से अलग रहकर समाजसेवा करने वाले हैं, उनके साथ मिलकर काम करना चाहिए. जैसे लोग विनोवा भावे, जयप्रकाश नारायण के पास राय-मशविरे के लिए जाते थे. उसी तरह इन युवाओं को उनकी ओर जाना चाहिए जो सत्ता से अलग रहकर राजगुरु का काम कर सकें. उनके अनुभवों से लाभ उठाकर काम करना चाहिए. मैं ऐसी सरकार चाहती हूं जो उनलोगों की चिंता करे, जिनका कोई नहीं है. जैसे महिलाएं, बेरोज़गार, विस्थापित, उजड़े हुए किसान, दुकानदार और वैसे विद्यार्थियों को-जो छोटे-छोटे शहरों से पढ़कर आए हों-नौकरी दिला सके.

अनामिका
कवयित्री

प्रचार में पानी की तरह बहता है पैसा

इस बार लोकतंत्र को एक और मौका मिला है कि वह अपने नेतृत्व का चुनाव कर सके. देश का भार लेकर जिम्मेदारी के पद पर बैठने वाले लोगों का चुनाव करना ही लोकतंत्र की सबसे बड़ी उपलब्धि होती है. इस बार के चुनाव की ख़ास बात यह रही है कि इसमें युवाओं का आगमन बढ़ गया है. युवा किसी भी देश का आधार होते हैं, उनसे उम्मीद करनी चाहिए कि वे अच्छी तरह से अपनी जिम्मेदारी को निभाएंगे. इस चुनाव में जो बात सबसे ज्यादा दुखी करती है, वह है चुनाव प्रचार में पानी की तरह बहाया जाने वाला पैसा. यह पैसा मुख्य रूप से काला धन है, जिसका इस्तेमाल करके नेतागण अपने भविष्य का निर्णय करना चाहते हैं. जहां एक ओर पूरा विश्व आर्थिक संकट से घिरा है, भारत को भी अप्रत्यक्ष तौर से इसका नुकसान उठाना पड़ रहा है. इस नुकसान का भुगतान करने वाली है आम जनता, जिसे नौकरी और अन्य बुनियादी सुविधाओं के लिए लड़ना पड़ रहा है. एक और बात जो इस चुनाव प्रचार की दुखी करती है, वह यह कि नेतागण जब प्रचार करने क्षेत्र में निकलते हैं तो वहां की बुनियादी चीजों जैसे शिक्षा, रोज़गार, रोटी, कपड़ा और मकान के बारे में न बोल कर अमेरिका, रूस और विश्व स्तरीय समस्याओं के बारे में बोलते हैं, या फिर किसी ख़ास जाति, वर्ग या समुदाय के हित-अहित की बात करते हैं. ऐसे में मतदाता अपने आप को उपेक्षित सा महसूस करता है. इसी का परिणाम मतदान वाले दिन देखने को मिला है. यही वजह है कि लगातार मतदान का प्रतिशत घटता जा रहा है. इसके अलावा छोटे ही नहीं, बड़े-बड़े शहरों में भी देखें तो कितनी ही जगहों पर बस्तियां, झुग्गियां हैं. ख़ासकर ऐसी जगहों पर भी जहां नेता अपने भाषण में उसे पूरी तरह डेवलप्ड शहर कहते हैं. ये किस तरह का डेवलपमेंट है, जहां सड़क की एक ओर आलीशान बिल्डिंगें बनी हैं तो दूसरी ओर झुग्गियां बसी हैं? इस वक्त ज़रूरत है कि देश की बुनियादी चीज़ों पर ध्यान दिया जाए. इनमें शिक्षा सर्वोपरि है. इसके अलावा दो वक्त की रोटी, तन ढकने को कपड़ा और मकान हर देशवासी की ज़रूरत है. संभव हो तो आनेवाली सरकार देश में इन बुनियादी चीज़ों की ज़रूरत को पूरा करने की दिशा में काम करे. मतदान के प्रतिशत का जायज़ा लेकर यह कहा जा सकता है कि जनता जागरूक है, पर जनता की जागरूकता इतने तक सीमित नहीं है कि वह मतदान के दिन छुट्टी मनाने घर बैठे, बल्कि क्षेत्रवाद, जातिवाद और भाई-भतीजावाद से ऊपर उठकर अपने और देश के लिए सही नेता चुने.

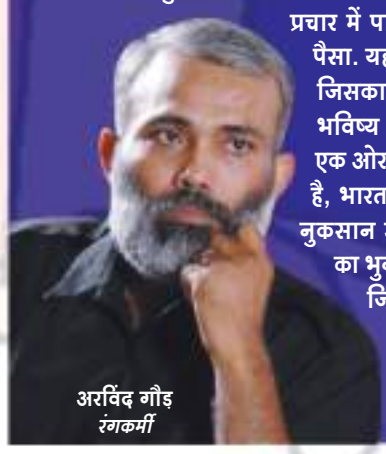

अरविंद गौड़
रंगकर्मी

नेतातंत्र में तब्दील हो रहा है हमारा लोकतंत्र

इस बार का आम चुनाव हमारे देश में लोकतंत्र की निरंतरता का सबूत है. भारतीय संसदीय लोकतंत्र समय के हिसाब से आज़ादी के बाद किया गया सबसे बड़ा प्रयोग था. उस समय संसदीय लोकतंत्र सफल होगा या नहीं होगा, इसको लेकर कई तरह की आशंकाएं थीं. पर अब आज़ादी के 60-62 वर्ष बाद देश की स्थिति को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह प्रयोग बहुत उत्साहवर्धक न होकर भी निराशाजनक नहीं है. भारत विविधताओं वाला देश है, और यहां हमने जो संसदीय लोकतंत्र का रास्ता चुना वह अंत में जाकर सही साबित हुआ.

हालांकि इस रास्ते पर चलकर भी कई परेशानियां पैदा हो रही हैं. जैसे राजनीति का अपराधीकरण बढ़ रहा है, परंपराओं का पालन नहीं हो रहा है, दल टूट रहे हैं जिसकी वजह विचारधारा और सिद्धांत न होकर व्यक्ति विशेष होते हैं. भारतीय लोकतंत्र नेतातंत्र के रूप में तब्दील होता जा रहा है, और ऐसे नेता किन्हीं मूल्यों की वजह से नहीं बल्कि स्वार्थों और सत्ता के लोभ में दलों को तोड़ रहे हैं, दलों पर काबिज़ हो रहे है.

दलों पर नेताओं और परिवारों का कब्जा हो रहा है. देश में ऐसे लोगों की, ऐसी सोच की, ऐसी संस्थाओं की ज़रूरत है जो राजनीतिक दलों पर दबाव बना सकें. ऐसी संस्थाओं को आगे आना चाहिए जो चुनाव में भले भागीदारी न करें पर जनतंत्र में उनकी सक्रियता होनी चाहिए. मेरे विचार से सूचना के कानून को और व्यापक और बेहतर बनाया जाना चाहिए.

चंदन मिश्र
छात्र, जामिया मिल्लिया विश्वविद्यालय

लोकतंत्र के अलावा और कोई रास्ता नहीं

देश में लोकतंत्र कायम रहना चाहिए और इसके लिए ज़रूरी है कि उन ताक़तों की जीत हो जो देश को विभाजित नहीं होने देना चाहतीं. देश में आतंकवाद सबसे बड़ा ख़तरा है. देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इन विभाजनकारी ताक़तों से हम किस प्रकार निपटते हैं. किसी दल का नाम लेना आवश्यक नहीं है, पर सब जानते हैं कि वे कौन से दल हैं जो सामाजिक समरसता को तोड़ना चाहते हैं. मेरे जैसे नागरिक के सामने सबसे बड़ा सवाल यही है. मतदान कम होने की वजह मैं नहीं जानता, क्योंकि मैंने जगह-जगह घूम कर देखा नहीं है, सीधे-सीधे लोगों से बात नहीं की, लोगों के बीच भी नहीं गया हूं. मैंने वही जाना जो अख़बारों के जरिए मुझे बताया गया और मीडिया के आधार पर बात कर रहा हूं. सच्चा भारतीय मतदाता शहरी मीडिया द्वारा तय की गई सीमारेखा से बाहर कहीं निवास करता है और उसकी बात हम शायद सुनना नहीं चाहते हैं, मीडिया तो कदापि नहीं सुनना चाहता है. नई सरकार भविष्य के गर्भ में है, इसलिए उसके बारे में बातें करना व्यर्थ है.

मेरे सामने चुनाव का एक ही रूप है. वह यह कि जो पार्टियां रैली करती हैं, जो मंचों से भाषण करती हैं, वे जनता का केवल इस्तेमाल करती हैं. उनमें बुनियादी परिवर्तन की कोई इच्छा नहीं दिखती है. फिर भी मैं चाहूंगा कि लोकतंत्र रहे, क्योंकि लोकतंत्र के अलावा और कोई रास्ता नहीं है हमारे पास.

केदारनाथ सिंह
वरिष्ठ साहित्यकार

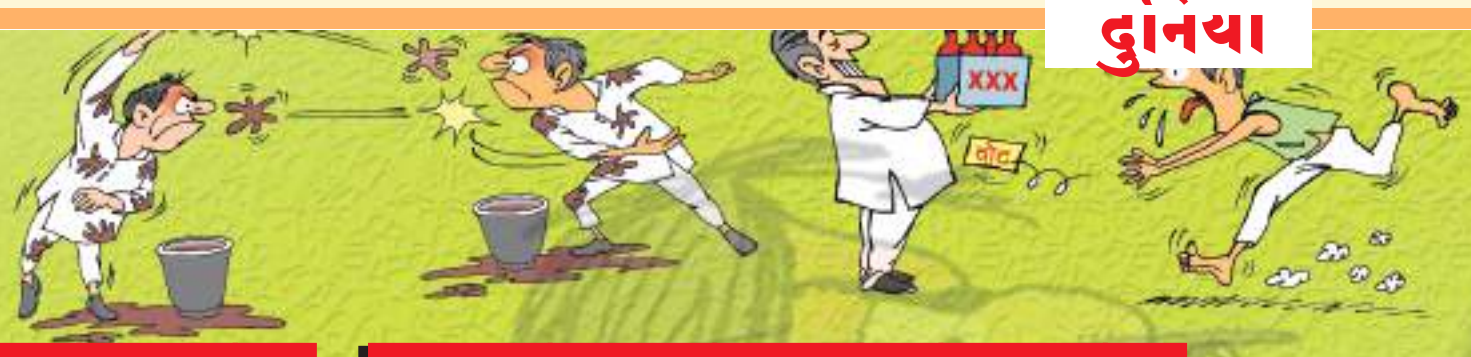

रहा मतदाता

परेशानियां सियासत करने वालों के वादों के बावज़ूद जस की तस बनी हुई हैं. आम जन नेताओं के इस छलावे को समझने लगा है. लिहाज़ा कुछ तय नहीं कर पाने की स्थिति में वह इस प्रक्रिया से ही दूर भागने लगा है. मतदान के प्रतिशत के कम रहने की बड़ी वजह भी यही रही. इन विषयों पर विभिन्न क्षेत्रों के लोगों ने जहां *चौथी दुनिया* से साझा किए अपने विचार, वहीं संवाददाता रूबी अरुण और रीतिका सोनाली ने की अन्य से बात.

आसिफ

कोई भी राज करे-उनकी और उनके जैसे मेहनतकशों की दुश्वारियां तो कम होंगी नहीं. यह पूछने पर आख़िर वे क्या बदलाव चाहते है और उन्हें कैसी सरकार चाहिए. आसिफ कहते हैं-ज़्यादा पढ़ा-लिखा तो हूं नहीं जो घुमा-फिरा कर बातों को सामने रख सकूं. बस इतना जानता हूं कि जो भी सत्ता में आए वह महंगाई पर काबू ज़रूर करे. जिससे दोनों वक्त का भरपेट खाना तो नसीब हो सके.

कनॉट प्लेस के पीवीआर प्लाज़ा के सामने पार्किंग का काम देखने वाले वीरेंद्र यादव बिहार के मुजफ्फरपुर ज़िले के रहने वाले हैं. हर साल दिल्ली से अपने गांव वोट देने के लिए ज़रूर जाते थे. पर इस बार नहीं गए. क्यों भला? कहते हैं कि कोई फायदा नहीं वोट देने का. ग़रीबों के लिए हालात नहीं बदलने वाले. महंगाई और बेरोज़गारी ने जीना मुश्किल कर दिया है. हर बार नेता धोखा दे जाते हैं. तो क्या करेंगे वोट देकर. कोई भी पार्टी सरकार बनाए वह कुछ नहीं करने वाली. बेहद हताश दिखते हैं वीरेंद्र. कहते हैं कि पूरे दिन की कड़ी मेहनत के बाद भी बच्चों को स्कूल नहीं भेज पा रहे. नई सरकार से आशाओं पर उनका दो-टूक कहना है-कुछ नहीं. जो भी सरकार बनेगी वह अपना घर भरेगी. हम ग़रीबों की चिंता किसी को नहीं है.

मुश्किल दौर से गुज़र रहा है देश

देश में 1989 से ही लगातार खंडित जनादेश आ रहा है, जिसका मतलब है कि किसी राजनीतिक पार्टी को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं होता. जो सरकारें बनती हैं, उन्हें दूसरी पार्टियों का समर्थन लेना पड़ता है, तभी सरकारें बनती हैं. इस पृष्ठभूमि में अभी जो जनादेश आएगा, वह भी खंडित होगा और मुश्किल यह होगी कि सरकार कैसे बनेगी. हमारा देश इस समय बहुत मुश्किल दौर से गुज़र रहा है, क्योंकि केंद्र में हम वैसी सरकार चाहते हैं जो मज़बूत हो और पांच साल तक का अपना कार्यकाल पूरा कर सके. इस बार मतदान कम होने की पहली वजह गर्मी है. वैसे आमतौर पर हमेशा से संभ्रांत, उच्च और मध्य वर्ग के लोग वोट डालने नहीं जाते, पर इस बार का ट्रेंड अलग है. इस बार ग़रीब लोग भी मतदान करने से पीछे हट गए. एक ओर जहां इतने अभियान चलाए गए कि लोग जाकर मतदान करें, वहीं दूसरी ओर लोग वोट डालने नहीं आ रहे हैं. दरअसल जिन लोगों को यह लक्षित था वे सब पढ़े-लिखे थे. और, जहां इस तरह के कार्यक्रम पहुंचने चाहिए थे, वहां तक बात पहुंची ही नहीं. मतदान कम होने की यह दूसरी वजह है. तीसरी वजह यह है कि लोग यह मानने लगे हैं कि किसी की भी सरकार आए उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है. देश ऐसे ही चलेगा. फिर चुनाव आयोग ने इतनी बंदिशें लगा दीं कि उसका असर मतदान पर भी पड़ा. पहले पार्टियां अपनी गाड़ी में बैठाकर लोगों को मतदान केंद्र पर ले जाते थे, उस पर रोक लगाकर मतदाताओं को हतोत्साहित करने जैसा काम किया गया है.

मधुसूदन आनंद
वरिष्ठ पत्रकार

हमारे देश में पिछले 60 वर्ष में एक ओर लोकतंत्र की जड़ें गहरी हुई हैं, दूसरी तरफ जनता मत डालने के अपने अधिकार की महत्ता को ठीक से समझ नहीं पाई है. दुनिया में जितने भी लोकतांत्रिक देश हैं उनकी तुलना में हमारे देश में मतदान ज़्यादा है. इसलिए ऐसा नहीं कह सकते कि भारतीय मतदाता लोकतंत्र में अपना विश्वास खो रहा है. हमारे देश के संसदीय लोकतंत्र से बढ़िया मॉडल भारत के अलावा संसार में दूसरा अभी है ही नहीं. इसलिए लोकतंत्र में अपना भरोसा खोकर मतदाता जाएंगे कहां. भारतीय लोकतंत्र में थोड़े अंतर्विरोध तो हैं, पर जड़ें गहरी हो रही हैं. भारत विभिन्न भाषाओं, धर्मों, जातियों, संप्रदायों वाला देश है. यहां यह उम्मीद करना कि एक पार्टी की सरकार बनेगी, आदर्श के तौर पर तो बढ़िया है, पर व्यावहारिक तौर पर संभव नहीं है. कांग्रेस भी जब एक पार्टी थी, तब भी वह एक छाता के समान थी. उसमें विविधताओं का बेहतरीन संगम था. मंडल आयोग के बाद इस समागम को चुनौती मिली और जातियों का स्वाभिमान पैदा हुआ. पहचान की राजनीति शुरू हुई. कुछ मायनों में यह बुरी है, तो कुछ मायने में अच्छी भी है. ऐसा नहीं है कि यह बिल्कुल ही बुरी चीज़ है. नई सरकार से उम्मीद करते हैं कि वह आर्थिक मंदी के दौर से भारत को उबारे, हमारे देश की अंदरूनी चुनौतियों पर नज़र डाले, देश के कई हिस्सों में नक्सली सरकारें समानांतर रूप से काम कर रही हैं उनसे निपटे और पड़ोसी देशों की परेशानियों के असर से देश को बचाए.

नेताओं से तंग आ चुकी है जनता

पंजाब में आतंकवाद को नेस्तनाबूद करने वाले पंजाब पुलिस के रिटायर आईजी सी. पाल सिंह कहते हैं कि आज भारत की जनता अपने राजनेताओं से तंग आ चुकी है. वह उनकी झूठी बातों में फंसने को तैयार नहीं है. उसके दिल-दिमाग में यह बात घर कर चुकी है कि अब हालात नहीं सुधरने वाले. कुछ नहीं बदलने वाला. इसलिए बेहतर है कि वोट ही न दिया जाए. कई जगहों पर नाराज़ लोगों ने सबक सिखाने की नीयत से भी मतदान का बहिष्कार किया. इसलिए भी वोटिंग प्रतिशत कम रहा. नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में लोग डर से वोट डालने नहीं गए. वहां उन्हें माकूल सुरक्षा नहीं मिली. एक और जो बड़ी वजह रही, वह है लागों की आरामतलबी की आदत. ख़ासकर युवाओं की. आज के ज़माने में जहां ज़्यादातर काम उंगली के एक इशारे पर हो जा रहा है, वहां मतदान देने के लिए घंटों लाइन में लगना युवाओं को गवारा नहीं है. मेरे ख्याल से अगर वोटिंग ऑनलाइन कर दिया जाए. तो ज़्यादा बेहतर हो. चुनाव आयोग हर एक मतदाता को एक स्पेशल कोड आबंटित करे और उसी के आधार पर मतदान की प्रक्रिया पूरी हो.युवा वर्ग इसलिए भी मतदान में शिरकत करने से बचता है कि उसे शिक्षा और रोज़गार की चिंता ज़्यादा रहती है और उसकी इस समस्या पर राजनेता गंभीरता से ध्यान नहीं दे रहे. जो नई सरकार बने, वह प्रशासनिक तौर पर भी आमूलचूल बदलाव करे. जिससे निकम्मापन ख़त्म हो और बुनियादी बदलाव किए जा सकें. पर इन सबके लिए बेहद मज़बूत इच्छाशक्ति की ज़रूरत है. टाल-मटोल के रवैए से ये तब्दीलियां नहीं होने वाली. न ही इन अहम मसलों पर सियासत ही की जा सकती है. शहरी मध्यम वर्ग की तुलना में गांव की ग़रीब जनता कहीं ज़्यादा मतदान करती है. पिछले कुछ चुनावों में महिलाओं, पुरुषों, आदिवासी और गैर आदिवासियों के बीच मतदान का फासला भी कम हुआ है. इस जनभागीदारी ने हमारे लोकतंत्र के चरित्र को तो बदला है, पर हमारे राजनेता इसका फायदा नहीं उठा सके हैं. युवा वर्ग राजनीति में हिस्सेदारी के लिहाज़ से अन्य किसी पीढ़ी से बहुत अलग नहीं है, लेकिन मतदान में उसकी भागेदारी कम है. इसलिए कि हिंदुस्तान का युवा वर्ग अभी तक एक अलग विचार का वाहक नहीं बन सका है. और यह भी हमारी राजनीतिक पार्टियों की ही विफलता है.

सी पालसिंह

मतदान में गुणात्मक परिवर्तन हुआ है

दिल्ली में साकेत स्थित मैक्स अस्पताल के डॉक्टर अनिल ढल कहते हैं कि मतदान के कम होने की वज़ह यही है कि राजनेताओं की विश्वसनीयता ख़त्म हो चुकी है. लोग उन पर भरोसा करने को तैयार नहीं. अब ज़रूरत है कि राजनीति में नई खेप आए . नया दौर आए. वह कहते हैं कि ऐसा नहीं है कि सिर्फ हमारे देश में ही मतदान का प्रतिशत कम हुआ है. दुनिया के तमाम अमीर देशों में यही स्थिति है. फिर भी भारतीय लोकतंत्र दुनिया में अभी भी इक्कीस ही है. यहां राजनीतिक क्रांति की ज़रूरत है. अब स्वास्थ्य और शिक्षा की ही बात करें. कोई भी सरकार इसे लेकर जागरूक नहीं है. स्वास्थ्य समस्याओं को लेकर कहीं भी कोई आवाज़ नहीं उठती. गांव-देहात में हालात बहुत ख़राब हैं. बातें बड़ी-बड़ी की जाती हैं, पर किया कुछ नहीं जाता.

नई सरकार से हम यही उम्मीद करेंगे कि वह अपनी नीतियों में पारदर्शिता रखे. नीतियों में बदलाव लाए और ज़मीनी स्तर पर काम करे. अमूमन लोकसभा में 60 फीसदी वोट पड़ते हैं. विधान सभा में 70 फीसदी और पंचायत स्तर पर 80 फीसदी. पर पिछले कुछ चुनावों से इस प्रतिशत में कमी आई है. ऐसा नहीं है कि मतदाता उदासीन हो गया है, बल्कि मेरा मानना है कि अब वह अपने अधिकारों को लेकर सजग हो गया है. वह अपने क़ीमती वोट का ग़लत इस्तेमाल होने देना नहीं चाहता. वैसे समाज का एक तबका, जो तथाकथित शहरी मध्य वर्ग है, वह राजनीति से अलग रहना भी फैशन मानता है. पर इसकी तादाद इतनी नहीं कि नतीज़ों को प्रभावित करे.

डॉ. अनिल ढल

मतदान भले ही कम हुए हों पर इसमें गुणात्मक परिवर्तन हुआ है. इसे इससे समझ जा सकता है कि पहले औरत और मर्दों के बीच मतदान का फासला बहुत हुआ करता था, पर पिछले दो दशकों में मतदान में औरतों और मर्दों के बीच का यह फासला कम हुआ है. कई राज्य तो ऐसे हैं जहां महिलाएं, पुरुषों के मुक़ाबले ज़्यादा वोट डाल रही हैं. तो कुल मिला कर हालात सुधर रहे हैं. बिगड़े नहीं हैं.

परिसीमन भी रही कम मतदान की वजह

चुनाव आयोग के पूर्व सलाहकार और सुप्रीम कोर्ट की मॉनिटरिंग कमिटी के सदस्य केजे राव इस बार मतदान के प्रतिशत के कम होने की वजह परिसीमन को मानते हैं. कहते हैं कि संसदीय क्षेत्रों का नक्शा बदल जाने से मतदाताओं के सामने इस बार मुश्किलें बेशुमार थीं. लोगों को इस बारे में सही तरीके से बताया-समझाया भी नहीं गया. कई जगह मतदाता अपने मतदान केंद्रों के बजाय दूसरे केंद्रों पर चले गए. लिहाज़ा मतदान करने से वंचित रह गए. इसके अलावा इस बार चुनाव आयोग की तैयारियों में भी कई कमियां रह गईं. बड़ी संख्या में लोगों का नाम मतदाता सूची में शामिल नहीं हो पाया. इससे भी लोग वोट देने से वंचित रह गए.

दूर-दराज़ के क्षेत्रों में प्रशासनिक तैयारियां भी मुकम्मल नहीं हो पाईं. इससे भी लोगों को परेशानी हुई. कई जगह लोगों ने मतदान का बहिष्कार भी किया. युवा वर्ग इसलिए दूर रहा, क्योंकि परिवर्तन, बदलाव और क्रांति की जो उम्मीद उसने देश के राजनेताओं से बांध रखी है, वह पूरी होती नहीं दिख रही.

केजे राव, चुनाव आयोग के पूर्व सलाहकार

इस तरह तमाम ऐसे कारण रहे जिन्होंने लोगों को मतदान करने के प्रति उदासीन किया. यह उदासीनता यक़ीनन लोकतंत्र के लिए बेहद ख़तरनाक है. स्थिति और भी बिगड़े, उसके पहले चेत जाने की ज़रूरत है. आम जनों के मिजाज़ को भांप कर उनकी सहूलियतों के हिसाब से काम करने की आवश्यकता है. जो भी दल मिलजुल कर सरकार बनाएं, उनके लिए यह सबसे ज़रूरी है कि वे अपने वादे पूरे करें. देश को महज़ ज़ुबानी तरक्की न दे बल्कि सचमुच इसे बुलंदी पर पहुंचाए.

जागरूकता का नया दौर दिख रहा है

सा केत के मैक्स अस्पताल के डॉक्टर मोहन भार्गव कहते हैं कि सरकार तो उसी की बनेगी जो विकास करेगा. अब जनता नेताओं के झांसे में कतई नहीं आने वाली. वक्त आ गया है कि अब हम जात-जमात से ऊपर उठ कर सोचें. देश की तरक्की और संप्रभुता के बारे में सोचें.

यह सच है कि वोट पर जाति का असर पड़ता है. चाहे वह मतदाता हो या उम्मीदवार. और ऐसा सिर्फ हमारे यहां ही नहीं है. यह बात दुनिया के हर लोकतंत्र में मिलेगी. कभी-कभी जाति के नाम पर ध्रुवीकरण इतना तेज़ होता है कि लगता है कि इसके अलावा कुछ है ही नहीं. पर आंकड़े बताते हैं कि यह ध्रुवीकरण भी कोई ख़ास प्रभाव नहीं डाल पाता. पिछले कुछ सालों से जाति का वर्चस्व लगातार कम हुआ है. इसकी जगह पार्टी का चरित्र देखने का प्रचलन ज़्यादा बढा है. आज का मतदाता जागरूक हो चुका है. उसे महज़ बातों से नहीं बहलाया जा सकता. उसे काम चाहिए. वह चाहता है कि जो जन प्रतिनिधि हो, वह सामाजिक स्तर सुधारने, शिक्षा का स्तर ऊंचा करने का काम करे न कि सिर्फ बातें करे. जिस भी उम्मीदवार ने अपने-अपने क्षेत्र में थोड़ा भी काम किया है, मतदाताओं ने उसे तरज़ीह दी है.

डॉ. मोहन भार्गव

इस बार मतदान के प्रतिशत के कम रहने की सबसे बड़ी वज़ह यही रही है. जनता ने वैसे उम्मीदवारों को वोट नहीं देना बेहतर समझा, जिन्होंने जनता के वोटों के बल पर सत्ता सुख तो भोगा, पर किया कुछ नहीं. अब जो नई सरकार बनेगी, उससे हम यही उम्मीद करेंगे कि वह हमारी कसौटी पर खड़ी उतरे.

हालांकि हक़ीकत यही है कि हमारे देश में लोकतंत्र का नया दौर आया है. और यह राजनीतिक उदासीनता नहीं, बल्कि राजनीतिक जागरूकता का प्रमाण है.

एम जे अकबर

तैयार रहिए 2009 के इस मैराथन के लिए

किसी भी चुनाव के आख़िरी चरण में ज्योतिषियों और सट्टेबाजों की चांदी हो जाती है, क्योंकि दोनों के लिए ही मानसिक आलोड़न ज़रूरी है. हालांकि इससे एक सस्ता विकल्प भी मुहैया है. जो भी आगे की तस्वीर देखना और समझना चाहते हैं, उनको पीछे देखना होगा.

मई 2009 के रोमांच ने मई 2008 की उत्सुकता को पीछे छोड़ दिया है. इस चुनाव के बीज सिंह इज किंग के स्वर्णिम दिनों में ही निहित हैं, जब डॉक्टर मनमोहन सिंह ने वामदलों की गुलामी से छुटकारा पा लिया था और सदन के हो-हंगामे और टीवी के हल्ले के बीच परमाणु करार को पारित करा लिया था. ज़ाहिर है कि प्रधानमंत्रियों का अभिशाप पत्रकारों के लिए ज़रूरी प्रशंसा जुटा लेता है.

मई 2008 में कांग्रेस ने न केवल उस सहयोगी को नीचा दिखाया, जिसने उसे चार वर्षों तक सत्ता में रखा, बल्कि उस संतुलन को भी बिगाड़ा जो उसे सत्ता में वापस ला सकता था. अस्थिरता संक्रामक है. यह यूपीए के हरेक रिश्ते में रिस चुका है.

यह भी मज़ेदार है कि जिस परमाणु करार पर डॉक्टर सिंह ने कांग्रेस का अस्तित्व दांव पर लगा दिया था, वह पार्टी के प्रचार में हल्का सा जिक्र भी नहीं पा रहा है. मशहूर कहावत है कि एक घोड़े के लिए राजाओं ने अपना राज्य दांव पर लाग दिया. क्या पिछली बार दिल्ली में यही हुआ?

हम अब तक नतीजे नहीं जानते. साथ ही मुझसे अधिक बहादुर स्तंभकार ही इस बारे में कुछ भविष्यवाणी कर सकता है. हम केवल उन चाय के कपों को गिन सकते हैं जो हरेक प्रेस-कांफ्रेंस के बाद बिखरते हैं. हालांकि सही या काल्पनिक घात की तस्वीरें तो सार्वजनिक तौर पर प्रदर्शित की जा रही हैं. पर वही अपना हिसाब मांगेंगे जब सरकार बनाने की बारी आएगी.

> दिल्ली में 1952 के बाद से कई तरह की सरकारें आई हैं. अनुमानित से लेकर स्थायी और विचारधारात्मक से लेकर दुर्घटनावश बनी और मौकापरस्त सरकार तक. अगली सरकार को ज़ाहिर तौर पर जोड़-तोड़ का काम कह सकते हैं. यह एक ऐसी रजाई होगी, जिसकी हरेक चिंदी अधिक जगह के लिए मार करेगी, जो उसे जल्दबाजी में मिली होगी.

दिल्ली में 1952 के बाद से कई तरह की सरकारें आई हैं. अनुमानित से लेकर स्थायी और विचारधारात्मक से लेकर दुर्घटनावश बनी और मौकापरस्त सरकार तक. अगली सरकार को ज़ाहिर तौर पर जोड़-तोड़ का काम कह सकते हैं. यह एक ऐसी रजाई होगी, जिसकी हरेक चिंदी अधिक जगह के लिए मार करेगी, जो उसे जल्दबाजी में मिली होगी. अनिश्चितता ने ही अव्याख्येय को जन्म दिया है. पार्टियों के लिए यह प्रथा सी है कि वह नतीजे से पहले अपनी जीत की घोषणा कर देती हैं, लेकिन वह हार की घोषणा करना भी क्यों चाहेंगी? दिग्विजय सिंह ने कांग्रेस के विपक्ष में बैठने की कल्पना कर ली. श्रीमती शीला दीक्षित ने नीतीश कुमार की प्रशंसा कर दी, जिसका सीधा मतलब यह हुआ कि लालू प्रसाद और रामविलास पासवान का युग ख़त्म हो चला है. राहुल गांधी-जो अब कांग्रेस के नेता के तौर पर उभर कर आए हैं-ने लालू प्रसाद को उनके दूसरे चरण के चुनाव की पूर्व संध्या पर ही हड़का दिया. इस तरह का लचीलापन दिखा रहा है कि करुणानिधि को चुनाव हारना महंगा पड़ सकता है. डॉक्टर सिंह को अचानक याद आया कि बुद्धदेव भट्टाचार्य उनके दोस्त हैं. भावनाएं तो दरअसल कठोर नीतियों के खिलाफ कमज़ोर दलील ही होती हैं. जैसा कि मार्क्स ने कहा होता कि राजनीति कोई चाय-पार्टी तो है नहीं. अब भी परमाणु करार को पूरा करने के लिए कुछ कदम ज़रूरी हैं. क्या कांग्रेस करार को और उसे सफल बनाने के लिए की गई कवायद को रद्द कर देगी? ताकि वह वाम मोर्चे की मदद के साथ सरकार में बनी रह सके? कांग्रेस ज़ाहिर तौर पर चाहेगी कि प्रकाश करात और एबी बर्धन अप्रासंगिक हो जाएं, जिस तरह मुलायम सिंह यादव 2004 में हो गए थे. वैसे, क्या वाम मोर्चे के लिए यह झटका होगा अगर 16 मई के बाद भी कांग्रेस किसी गठबंधन की स्वाभाविक नेता बनी रह जाए.

दोनों ही जानते हैं कि केवल मजबूरी ही उनको एक साथ ला सकती है. वह मजबूरी भाजपा को सत्ता से बाहर रखने की है. हालांकि यह बात अभी दूसरी बातों के तले दबी सी दिखाई पड़ती है. कांग्रेस ने बार-बार यह कहा है कि वह मनमोहन सिंह के अलावा किसी और को प्रधानमंत्री बनते देखने के बजाय विपक्ष में बैठना पसंद करेगी. वहीं मनमोहन सिंह वामदलों को स्वीकार्य नहीं. ऐसे में नतीजा क्या होगा?

खेल में एक से ज़्यादा मुश्किलें हैं. किंग और किंगमेकर दोनों जानते हैं कि राज्यों में उनके लिए बहुत कुछ हाथ लगने वाला नहीं है. वाम दल और ममता बनर्जी कभी एक साथ नहीं आ सकते और यही हाल मुलायम और माया का भी है. सवाल यह भी है कि क्या चंद्रबाबू नायडू और राजशेखर रेड्डी एक साथ रह पाएंगे? 2004 में बनी सरकार अंकगणित का सही जोड़ बिठा पाई थी. 2009 में सरकार को बीजगणित सुलझानी होगी, यानी मसला कहीं अधिक उलझा होगा.

शायद बिहार और तमिलनाडु ही ऐसे राज्य हैं, जहां नतीजों का अनुमान लगाया जा सकता है. जो राजनेता इस लड़ाई में सबसे बेहतर बन कर उभरा है, वह नीतीश कुमार हैं. जो भी जीत की इस खुमार में अपने होश कायम रख सकता है, वही नेतृत्व दे सकता है. बिहार में नीतीश पूरी तरह जीत रहे हैं और उन्होंने बार-बार बिहार के लिए अपनी प्रतिबद्धता ज़ाहिर की है. वह मैराथन के धावक बनने लायक हैं.

बाकी भारत के लिए ज्योतिषी और सट्टेबाज तो हैं ही. सट्टेबाज थोड़े बेहतर इसलिए माने जाते हैं क्योंकि वह अपनी बात पर पैसा भी खर्च करने को तैयार रहते हैं. मेरे एक दोस्त ने-जो बुद्धिमान पैदा हुआ, पर समय के साथ और होशियार हो गया-कोलकाता रेसकोर्स के शानदार वातावरण में कुछ समय बिताने के बाद मुझे दौड़ के पहले नियम की याद दिलाई. सट्टेबाज वहीं पैसे बनाते हैं, जब पसंदीदा हार जाए. तो फिर, एक सट्टेबाज क्या चाहेगा? खुद को सही करना या पैसे कमाना ? यह क्या फिजूल सवाल नहीं?

feedback.chauthiduniya@gmail.com

रवि किशोर

सरकार बनाने वाली पार्टी के पास बहुमत ज़रूरी नहीं

पंद्रहवीं लोकसभा के लिए चुनाव समाप्ति की ओर बढ़ रहे हैं. परिणाम 16 मई तक आ जाएंगे और सारे पूर्वानुमान एक खंडित जनादेश की तरफ ही इशारा कर रहे हैं. मतलब कि कोई भी राजनीतिक दल या गठबंधन साफ तौर पर बहुमत पाने नहीं जा रहा है. हरेक नज़र महामहिम राष्ट्रपति पर ही रहेगी कि वह किसे केंद्र में सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करती हैं. संवैधानिक प्रावधान इस मामले में बहुत स्पष्ट नहीं हैं कि सरकार बनाने के लिए राष्ट्रपति किसे आमंत्रित करें. दरअसल, संविधान राष्ट्रपति को प्रधानमंत्री नियुक्त करने का अधिकार देता है, न कि केवल किसी को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित करना ही काम है. यह भी अफवाह है कि एक महत्वपूर्ण दल ने चुनाव के नतीजे आने के तुरंत बाद दायर करने के लिए लिखित याचिका तैयार कर रखी है, ताकि सुप्रीम कोर्ट से राष्ट्रपति को सबसे बड़ी पार्टी को आमंत्रित करने के लिए कहा जा सके. यानी कि जिस पार्टी के सबसे अधिक सांसद चुन कर आए हैं, उसे ही सरकार बनाने को आमंत्रित किया जाए. वैसे, यह संदेहास्पद है कि ऐसी हालत में सुप्रीम कोर्ट कोई निर्देश देगा जो राष्ट्रपति की प्रधानमंत्री की नियुक्ति के अधिकार से संबंधित हो.

संविधान के अनुच्छेद 75(1) के मुताबिक-प्रधानमंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा होगी. संविधान का यह प्रावधान ऐसा है जिससे राष्ट्रपति यह काम अपनी इच्छा से और बिना प्रधानमंत्री या मंत्रिमंडल की सलाह के बिना करता है. दूसरे मामलों में राष्ट्रपति लगभग बाध्य होते हैं कि वह मंत्रिमंडलीय समूह की सलाह के मुताबिक काम करें, जिसका प्रमुख प्रधानमंत्री है. प्रधानमंत्री की नियुक्ति पूरी तरह राष्ट्रपति के विवेक और इच्छा पर निर्भर करती है. प्रधानमंत्री की नियुक्ति का सवाल आम तौर पर लोकसभा के ताजा चुनाव के बाद या कार्यकाल के दौरान प्रधानमंत्री की मौत या इस्तीफे से पैदा होता है.

हालांकि ऐसा लगता है कि संवैधानिक प्रावधान के तहत राष्ट्रपति को यह अधिकार है कि वह चाहे जिस किसी को प्रधानमंत्री बना दें, पर व्यवहार में ऐसा है नहीं. सच तो यह है कि कई परंपराएं, पुराने उदाहरण और संविधान के कई प्रावधान अप्रत्यक्ष तौर पर राष्ट्रपति के लिए दिशा-निर्देश तय करते हैं या फिर कहें तो उसके अधिकार को सीमित कर देते हैं. संविधान के अनुच्छेद 75(3) में यह प्रावधान है कि मंत्रियों की परिषद लोकसभा के प्रति सामूहिक रूप से जिम्मेदार है और प्रधानमंत्री इसके प्रमुख के तौर पर लोकसभा का विश्वास पाता है. इसी वजह से यह ज़रूरी है कि राष्ट्रपति किसी ऐसे व्यक्ति को प्रधानमंत्री नियुक्त करे, जिसे लोकसभा सदस्यों के बहुमत का समर्थन प्राप्त हो और वह सदन में अपना बहुमत साबित कर सके. इसके बगैर वह काम करने में सफल नहीं हो सकेगा.

यह अपेक्षा की जाती है कि राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत पाई पार्टी के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त करें. वैसे, हालात पिछले कुछ आम चुनाव में जटिल हो गए हैं, क्योंकि किसी भी एक राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला है. राष्ट्रपति का यह विशेषाधिकार तब खास तौर से बेहद अहम हो जाता है, जब किसी पार्टी को स्पष्ट बहुमत न मिले. अगर जनादेश खंडित है तो राष्ट्रपति को अपना विशेषाधिकार और विवेक इस्तेमाल कर यह तय करना होता है कि कौन सा प्रत्याशी बेहतर हो सकता है.

हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि सरकार बनाने वाली पार्टी का बहुमत हो ही, एक अल्पमत की सरकार भी दूसरी पार्टियों के समर्थन से बन सकती है, जिसे बाहरी समर्थन कहा जाता है. यह पहली बार 1969 में तब हुआ था, जब इंदिरा गांधी की सरकार ने संख्याबल में कम होते हुए भी सत्ता कायम रखने में सफलता पाई थी. हालांकि कई बार इंदिरा की सरकार को चुनौती भी मिली पर हरेक अवसर पर अविश्वास प्रस्ताव को मजबूत अंतर से गिरा दिया गया. वैसे मामलों में भी जब दो या तीन से अधिक पार्टियों ने चुनाव पूर्व गठबंधन या उसके बाद के सहयोग से लोकसभा में बहुमत पाने में कामयाबी हासिल की हो, तब भी राष्ट्रपति के पास इसको छोड़ कर कोई विकल्प नहीं रहता है, जब ऐसे गठबंधन के नेता को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाए. यह 1977 में हुआ था. तब जनता पार्टी (कई पार्टियों का गठबंधन) ने बहुमत हासिल कर लिया था और मोरारजी देसाई को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया था. 1979 में जनता पार्टी के विघटन के बाद चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाया गया, क्योंकि उनको कांग्रेस का समर्थन प्राप्त था. वैसे तो चरण सिंह को लोकसभा में बहुमत प्राप्त नहीं था, फिर भी उनको मोरारजी देसाई की तुलना में अधिक सदस्यों का समर्थन प्राप्त था. चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री बनाते हुए राष्ट्रपति ने इच्छा जताई थी कि लोकशाही की ऊंची मान्यताओं और परंपराओं को देखते हुए प्रधानमंत्री को जल्द से जल्द विश्वास मत प्राप्त कर लेना चाहिए. यह बिल्कुल अलग बात है कि कुछ ही दिनों में कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया और अल्पमत में आने की वजह से चरण सिंह को इस्तीफा देना पड़ा. आखिरकार लोकसभा भंग हुई और नए चुनाव हुए.

चौधरी चरण सिंह की नियुक्ति को चुनौती देते हुए दिल्ली हाईकोर्ट में एक याचिका दाखिल की गई थी. उस मामले (दिनेश चंद्र पांडे बनाम चौधरी चरण सिंह) में न्यायालय ने याचिका खारिज करते हुए यह व्यवस्था दी थी कि राष्ट्रपति सदन के उस सदस्य को प्रधानमंत्री नियुक्त कर सकते हैं, जो उनकी नज़र में बहुमत पाने लायक हो सकता है. राष्ट्रपति उस व्यक्ति को मंत्रियों का समूह बनाने को कह सकते हैं और अगर वह व्यक्ति अपना बहुमत साबित करने में असफल भी हो जाता है, तब भी उसे अगली सरकार गठित होने तक अपने पद पर बने रहने को कहा जा सकता है.

कोर्ट ने याचिकाकर्ता की यह दलील खारिज कर दी कि लोकसभा में बहुमत साबित करने के बाद ही किसी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया जाए. कोर्ट ने अपनी व्यवस्था में यह भी कहा कि आखिरकार इस दलील को स्वीकारने का मतलब यह होगा कि अंततः राष्ट्रपति नहीं, बल्कि लोकसभा ही प्रधानमंत्री का चुनाव करती है. संविधान के अंतर्गत यह राष्ट्रपति का विशेषाधिकार है. कोलकाता हाईकोर्ट में इसी के बाद एक नई याचिका दाखिल की गई, जिसमें पूछा गया था कि किस अधिकार के तहत प्रधानमंत्री और उनके सहयोगियों ने राष्ट्रपति को लोकसभा भंग करने की सलाह दी और साथ ही यह कारण भी बताने को कहा गया कि चौधरी चरण सिंह को प्रधानमंत्री की कुर्सी से मुक्त क्यों न कर दिया जाए? इस मामले (मदन मुरली वर्मा बनाम चौधरी चरण सिंह) में भी कलकत्ता हाई कोर्ट ने याचिका को खारिज कर दिया और कहा कि प्रधानमंत्री नियुक्त करना राष्ट्रपति के विवेक पर निर्भर करता है. राष्ट्रपति अपने चुनाव में अपनी राय और विवेक को छोड़कर किसी और पर निर्भर नहीं करते. राष्ट्रपति भले ही प्रधानमंत्री को नियुक्त करने में राजनीतिक तौर पर सही हों या नहीं, यह मामला कोर्ट तय नहीं करेगा. इसके बाद हमने ऐसे कई उदाहरण देखे, जब ऐसे कई प्रधानमंत्री नियुक्त किए गए जिन्हें लोकसभा में साफ तौर पर बहुमत प्राप्त नहीं था. 1989 में वीपी सिंह और उनके इस्तीफे के बाद नवंबर 1990 में चंद्रशेखर का प्रधानमंत्री बनना यही साबित करता है. दोनों ही मामलों में राष्ट्रपति इस बात से संतुष्ट दिखे कि दोनों प्रधानमंत्री अपना बहुमत सिद्ध कर देंगे. वीपी सिंह को भाजपा का बाहर से समर्थन प्राप्त था तो चंद्रशेखर को कांग्रेस सपोर्ट कर रही थी. दोनों ही मामलों में प्रधानमंत्री को बहुमत सिद्ध करने को कहा गया. वीपी सिंह इसमें सफल रहे, जबकि चंद्रशेखर बहुमत साबित नहीं कर सके, चूंकि कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस ले लिया था. 1991 के आम चुनाव में भी किसी दल को साफ बहुमत नहीं मिला था. कांग्रेस 251 सदस्यों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के तौर पर उभरी थी. सबसे बड़ी पार्टी के नेता के तौर पर नरसिंह राव को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया, भले ही वह बहुमत से 14 की संख्या कम रखते थे. उनको चार सप्ताह के अंदर बहुमत साबित करने को कहा गया, जो उन्होंने साबित कर दिया. उनकी सरकार ने अपना कार्यकाल पूरा किया. 1996 में लोकसभा भंग हुई और नए चुनाव हुए. फिर किसी भी दल को बहुमत नहीं मिला और भाजपा 162 सीटों के साथ सबसे बड़े दल के रूप में उभरी. अटल बिहारी वाजपेयी को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया और पंद्रह दिनों के अंदर विश्वास मत पाने को कहा गया. वाजपेयी ऐसा करने में विफल रहे और 13 दिनों के बाद उन्होंने इस्तीफा दे दिया. राष्ट्रपति ने तब संयुक्त मोर्चा के नेता को सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया, जिनको कांग्रेस के समर्थन का भरोसा था. एचडी देवेगौड़ा और उसके बाद इंद्र कुमार गुजराल की सरकार दिसंबर 1997 तक इसी वजह से चली और उसके बाद कांग्रेस ने समर्थन वापस खींच लिया. इसके बाद के चुनावों में क्रमशः वाजपेयी और मनमोहन सिंह को प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया. हालांकि उनकी पार्टी या गठबंधन को साफ तौर पर बहुमत नहीं मिला था. जाहिर है कि कसौटी तो केवल लोकसभा में उनके बहुमत प्राप्त करने की क्षमता की थी. यह उन्होंने साबित भी कर दिखाया. देवेगौड़ा जब प्रधानमंत्री बने थे तो उनकी नियुक्ति को सुप्रीम कोर्ट में चुनौती इस आधार पर दी गई थी कि वह संसद के सदस्य नहीं हैं. एसपी आनंद बनाम एचडी देवेगौड़ा के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने देवेगौड़ा की नियुक्ति को सही ठहराया और याचिकाकर्ता की इस बात को खारिज कर दिया कि अगर कोई गैर-सदस्य प्रधानमंत्री बनता है तो वह राष्ट्रीय हितों के ख़िलाफ़ होगा. कोर्ट ने यह व्यवस्था दी कि एक बार प्रधानमंत्री बनने के बाद कोई भी व्यक्ति सदन के प्रति जिम्मेदार और जवाबदेह हो जाता है. कोर्ट ने कहा कि अगर कोई व्यक्ति सदन का सदस्य नहीं भी है, तब भी उसे मंत्रियों के समूह का नेता चुना जा सकता है.

इन बातों से यह साफ है कि प्रधानमंत्री की नियुक्ति पूरी तरह राष्ट्रपति का विशेषाधिकार है और यह उसके ही विवेक पर निर्भर करता है कि वह किसे सरकार बनाने को बुलाते हैं. यह उम्मीद की जाती है कि राष्ट्रपति हमेशा ही उच्च प्रजातांत्रिक मूल्यों और परंपराओं का पालन करेंगे और प्रधानमंत्री की नियुक्ति तभी करेंगे जब वह इस बात से संतुष्ट हों कि उस व्यक्ति को बहुमत मिल जाएगा. यह हाई कोर्ट और सुप्रीम कोर्ट की कई व्यवस्थाओं से भी जाहिर है कि राष्ट्रपति के इस अधिकार को किसी कोर्ट में चुनौती नहीं दी जा सकती.

(लेखक सुप्रीम कोर्ट के वकील हैं)

feedback.chauthiduniya@gmail.com

संपादक जी,
फिर आ गई चौथी दुनिया
लेकर नई-नई ख़बर

तीन मई के अंक में *पहला ही दहला* और *हक़ के लिए उबल रहे हैं किसान* वाले आलेख बहुत अच्छे लगे. खासकर जब इंडिया बनते भारत के मुट्ठी भर लोग भारत की छाती पर मूंग दल कर इंडिया बनाना चाहते हैं. उन्हें पता नहीं है कि गांव मर जाएंगे तो शहर भी ज़िंदा नहीं रह पाएंगे. इस सच्चाई को वे समझ लें. यह चेतावनी उनके लिए है, जो अपनी जड़ों से कट रहे हैं. *वादों का मारा बुंदेलखंड* स्टोरी कमाल की है. लगता है कि लेखक ने बुंदेलभूमि के मर्म को गहराइयों तक समझा है. बुंदेली भाषा का जितना अच्छा प्रयोग यहां के बाशिंदों के दर्द के संदर्भ में किया गया है-उसके क्या कहने. उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश से ठगे जा रहे लोगों के साथ कब न्याय होगा, यह प्रश्न हमें सोचने के लिए विवश करता है. क्या आज़ादी हमें इसीलिए मिली? क्या रानी लक्ष्मीबाई की शहादत का मूल्य इस धरती के लोगों के साथ अन्याय कर चुकाएंगे? कब जागेगा भारत?

आपका
रामगोविंद बुंदेल
आलमनगर, लखनऊ

आदरणीय संपादक महोदय,

आपका साप्ताहिक अख़बार देखा. बहुत अच्छा लगा. इसका लेआउट और रंग-रूप बहुत बढ़िया है. अन्य अख़बारों से यह देखने में बहुत अलग है. हालांकि इसका कलेवर भी अलग है. एक अनुरोध है कि खेल के पन्नों की संख्या बढ़ाई जाए. खेल पर अधिक कवरेज होना चाहिए, ताकि हम जैसे खेल प्रेमियों को खेल से संबंधित रोचक ख़बरें अधिक से अधिक पढ़ने को मिले. बाकी स्तंभ भी बड़े रोचक हैं. राजनीतिक ख़बरें लीक से हटकर हैं. उम्मीद है कि यह अख़बार इसी तरह आगे बढ़ता रहेगा.

आपका
दीपिका (सेनू)
एल-5, शिवलोक कॉलोनी, रानीपुर मोड़
हरिद्वार

चौथी दुनिया
हिन्दी का पहला साप्ताहिक अखबार

हम चाहते हैं कि आप अपने क्षेत्र के जागरूक संवाददाता बनें. आप अपने आसपास घट रही घटनाओं, जिनका संबंध, महिलाओं, बच्चों, किसानों, दलितों, अल्पसंख्यकों की समस्याओं उनके संघर्ष, उनपर होने वाले अत्याचार से हो, या आप अपने आसपास राजनीति, पुलिस और बाहुबलियों से जुड़ी घटनाओं पर रिपोर्ट भेजना चाहें, तो हम उनका स्वागत करेंगे. संपादकीय विभाग द्वारा चुनी गई प्रथम रिपोर्ट को तीन हजार रुपए का पुरस्कार दिया जाएगा. कृपया रिपोर्ट अपनी तस्वीर के साथ भेजें. अगर आप रिपोर्ट मेल करना चाहें, तो रिपोर्ट story.chauthiduniya@gmail.com *पर भेज सकते हैं.*

जब तोप मुकाबिल हो

> तो क्या यह संसद अपनी साख खोने के रास्ते पर चल पड़ी है? डर लगता है कहने में, लेकिन कहना पड़ता है कि हां, चल पड़ी है. संसद भारत में लोकतंत्र का चेहरा और पहचान है. अगर इसमें बैठने वाले, किसानों, अल्पसंख्यकों, बेरोज़गारों, दलितों और कमज़ोर वर्गों के बारे में न सोचें तो वे मिलजुल कर लोकतंत्र के खात्मे के रास्ते पर संसद को ले जाएंगे. यह केवल डर नहीं है, बल्कि सच्चाई है.

आज के राजनेता किस तरह के उदाहरण बनेंगे, और आगे आने वाले इनके पदचिह्नों पर कैसे चल कर किस तरह का व्यक्तित्व विकसित करेंगे, इसे देखना-समझना और फिर अपना सिर पीटना चाहिए. लेकिन एक उदाहरण पहले के नेताओं का आपके सामने रखना चाहते हैं.

आचार्य नरेंद्र देव और उनके साथियों ने प्रजा सोशलिस्ट पार्टी बनाई थी. नेहरू जी प्रधानमंत्री थे. आचार्य नरेंद्र देव बीमार थे और नई पार्टी का घोषणापत्र लिखा जाना था. आचार्य जी ने घोषणापत्र लिखने के लिए संपूर्णानंद जी से अनुरोध किया, जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया. पं. संपूर्णानंद उस समय उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री थे. जब संपूर्णानंद जी द्वारा लिखित घोषणापत्र आया तो आचार्य नरेंद्र देव ने कहा कि इसे प्रेस में भेज दो. वहां उपस्थित लोगों ने कहा कि एक बार देख तो लीजिए, संपूर्णानंद जी कांग्रेस में हैं और मुख्यमंत्री हैं. आचार्य जी मुस्कुराए और बोले कि कुछ देखने की ज़रूरत नहीं है, जब संपूर्णानंद ने लिखा है तो कॉमा बदलने की भी आवश्यकता नहीं होगी. यह था विश्वास. कांग्रेस के मुख्यमंत्री ने अपनी विरोधी पार्टी का घोषणापत्र लिखा और विरोधी दल का सर्वोच्च नेता उस घोषणापत्र में कॉमा भी बदलना नहीं चाहता. यह गुप्त भी नहीं था, सभी को इस बात का पता था. पंडित नेहरू से लोगों ने कहा कि वह पंडित संपूर्णानंद को मना करें कि वह न लिखें, पर पंडित जी ने कहा कि आचार्य जी ने कहा है तो मैं कैसे संपूर्णानंद जी को मना कर सकता हूं.

ऐसा ही एक और उदाहरण है. प्रजा समाजवादी पार्टी ने लखनऊ में विधानसभा के सामने सरकार विरोधी प्रदर्शन आयोजित किया. चंद्रभानु गुप्त उस समय मुख्यमंत्री थे. लगभग दस हज़ार लोग प्रदर्शन में आए थे. शाम को उनके खाने की समस्या आ गई. पार्टी के पास पैसा ही नहीं था. चंद्रशेखर ने साथियों से कहा कि चलते हैं गुप्ता जी से कहते हैं कि वह खाने के लिए कुछ करें. चंद्रशेखर गुप्ता जी के पास गए और इससे पहले कि चंद्रशेखर उनसे कहते, उन्होंने कहा कि उन्होंने दरबारी लाल से दस हज़ार लोगों के खाने के इंतज़ाम के लिए कह दिया है. सबने रात में खाना खाया. ऐसे होते हैं नेता. मुख्यमंत्री अपने ही ख़िलाफ़ प्रदर्शन करने वाले हर प्रदर्शनकारी के लिए खाने का इंतज़ाम कर रहा है. इस क्रम की आख़िरी कड़ी चंद्रशेखर जी थे. कल्पनाथ राय जेल भेज दिए गए, चंद्रशेखर सबसे पहले उनसे मिलने गए और जजों के ख़िलाफ़ कड़ा बयान दिया. लालू यादव चारा घोटाले में पकड़े गए, चंद्रशेखर उनसे मिलने जेल गए. मुलायम सिंह की हर मुसीबत में खड़े रहे. जब नरसिंह राव से कोई मिलने नहीं जाता था, तब वह अक्सर उनके पास जाते थे.

अब आज के नेताओं को देखें. लगता है इनमें राजनीतिक संस्कार हैं ही नहीं. इनकी भाषा सुनिए तो लगेगा कि संस्कार पाया ही नहीं है. विरोधी दल के साथी की इज्ज़त तो छोड़ दीजिए, अपने ही दल के नेता को कब कहां बेइज्ज़त कर देंगे, कहा नहीं जा सकता. इन चुनावों में तो सभी ने शालीनता की सीमाएं तोड़ दीं. आलोचना कब गाली बन जाती है और कब सभ्यता की सीमा लांघ जाती है, इसका किसी ने न ध्यान रखा और यह भी बता दिया कि उन्हें इसका ज्ञान ही नहीं है.

अब गठबंधन बनाने का वक्त आ गया है तो आप देखेंगे कि जिन्होंने एक-दूसरे को आलोचना से आगे जाकर कोसा है, उन्हें हराने में अपनी सारी ताक़त लगाई है, अब उन्हीं के साथ मिलकर सरकार बनाने की कोशिश करेंगे. ऐसा लगेगा जैसे पहले कुछ हुआ ही न हो. पर ये लोग भूल जाते हैं कि इनकी साख देश के मतदाताओं में लगभग शून्य के आसपास पहुंचती जा रही है.

> डॉ. राममनोहर लोहिया बहुत थोड़े समय के लिए लोकसभा में रहे, लेकिन उनके भाषण आज भी याद किए जाते हैं. आज कितने सांसद हैं जिनका नाम ज़ुबान पर लें और अच्छा लगे या कितने नेता ऐसे हैं जिनका भाषण दूसरों को सुनाने में गर्व महसूस हो.

ऐसे नेता आज हैं तो इनके अनुयाई इनसे आगे ही जाएंगे. पंद्रहवीं लोकसभा में आप सांसदों की मार-पिटाई देखने लिए तैयार हो जाइए, क्योंकि कोई किसी की वहां इज्ज़त नहीं करता. अगर ज़्यादा योग्य शिष्य आ गए तो रिवाल्वर भी लहराई जा सकती है.

पच्चीस साल पहले सांसदों का नाम लेने में गर्व अनुभव होता था. नाथ पाई, एच वी कामथ, मधु लिमए, किशन पटनायक, भूपेश गुप्त, ज्योतिर्मय बसु, चंद्रशेखर, कृष्णकांत, मोहन धारिया जैसे नामों की लंबी कतार है. डॉ. राममनोहर लोहिया बहुत थोड़े समय के लिए लोकसभा में रहे, लेकिन उनके भाषण आज भी याद किए जाते हैं. आज कितने सांसद हैं जिनका नाम ज़ुबान पर लें और अच्छा लगे या कितने नेता ऐसे हैं जिनका भाषण दूसरों को सुनाने में गर्व महसूस हो.

ऐसे ही नेताओं का ज़माना आ गया है, जिनका नाम लेने में खुशी महसूस न हो और लगता है कि ऐसे ही लोगों से आने वाली लोकसभा सुशोभित भी होगी. क़ानून बनेंगे पर उन्हें कोई सांसद पढ़ेगा नहीं, तो जो सेक्शन अफसर लिखकर भेजेगा वही पास हो जाएगा. किसानों के गुस्सैल आंदोलन होंगे, बेरोज़गारी का बुरा असर होगा, महंगाई परेशान करेगी, आतंकवाद घेरे में लेगा लेकिन संसद में इन पर ठोस बहस नहीं हो पाएगी. बहस होगी, पर एक-दूसरे पर वार करने के लिए, अपमानित करने के लिए. क्या कभी जनता की समस्याएं भी संसद की चिंता का विषय बन पाएंगी?

तो क्या यह संसद अपनी साख खोने के रास्ते पर चल पड़ी है? डर लगता है कहने में, लेकिन कहना पड़ता है कि हां, चल पड़ी है. संसद भारत में लोकतंत्र का चेहरा और पहचान है. अगर इसमें बैठने वाले, किसानों, अल्पसंख्यकों, बेरोज़गारों, दलितों और कमज़ोर वर्गों के बारे में न सोचें तो वे मिलजुल कर लोकतंत्र के खात्मे के रास्ते पर संसद को ले जाएंगे. यह केवल डर नहीं है, बल्कि सच्चाई है.

तो क्या उन्हें आगे आना पड़ेगा, जो नेता नहीं माने जाते या जो संसद में नहीं जाना चाहते? ऐसे लोग होंगे अवश्य, लेकिन वे दुनिया के सामने हम मीडिया वालों की मेहरबानी से आगे नहीं आ पाते. सौ करोड़ से ज़्यादा की आबादी वाला मुल्क अच्छे लोगों के लिए तरसता रहे, जो नेतृत्व कर सकें, जो उदाहरण बन सकें, तो यह लानत है. आने वाले महीने बहुत ख़तरनाक हैं, क्योंकि ये तय करेंगे कि हमारे देश में लोकतंत्र का भविष्य कैसा है. यही महीने तय करेंगे कि राजनीतिक दल अपनी साख बिगाड़ने के लिए और कौन-कौन से काम करते हैं.

जनता को जागना चाहिए, जागना ही होगा, नहीं तो उसकी किस्मत किसी तानाशाह की मुट्ठी में क़ैद हो जाएगी. तानाशाही कैसी होती है और उसमें क्या होता है, क्या किसी को बताने की ज़रूरत है?

संपादक

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मनीष कुमार

पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव के मायने

इस बार का चुनाव कई मायने में अभूतपूर्व रहा. जनता ख़ामोश रही. न कोई लहर, न कोई हवा. लोगों की चुप्पी ने यह बता दिया कि गुप्त मतदान का अर्थ क्या होता है. यह ख़ामोशी ही इस बात का सबूत है कि भारत की जनता कितनी परिपक्व है. कई सालों से लोगों की नब्ज़ पहचानने का दावा करने वाले, स्विंग का स्वांग रचा कर चुनाव विश्लेषण करने वाले बड़े-बड़े विशेषज्ञ टीवी स्टूडियो में पहली बार हाथ खड़े करते नज़र आए. चुनाव परिणाम आने से पहले तक यह कोई नहीं बता सका कि जनता का फैसला क्या है. चुनावी कोलाहल के बीच जनता ने अपनी ख़ामोशी से बहुत गहरे और भविष्य के लिए महत्वपूर्ण संकेत दिए.

पहली बार देश की जनता काम करने वाली सरकार के साथ नज़र आई. लोगों ने जाति, धर्म और संप्रदाय की दीवारों को दरकिनार कर विकास करने वाले राजनीतिक दलों और नेताओं को अपना वोट दिया. जनता की ख़ामोशी का मतलब यह भी है कि अब वह राजनीतिक दलों के छलावे में नहीं आएगी. यही वजह है कि कई नेताओं और पार्टियों के बीजगणित और अंकगणित के सारे समीकरण फेल हो गए. ऐसा बिहार में हुआ, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात और फिर दिल्ली में भी हुआ.

पहली बार दिखा कि लोगों ने बाहुबलियों के ख़िलाफ़ वोट किया. कई जगहों पर कुछ बाहुबलियों की जगह उनकी पत्नियां उम्मीदवार बनीं. बाहुबलियों को लगा कि चुनाव में उनकी दहशत और उनके नाम का सिक्का चलेगा और वे पत्नियों को आगे कर राजनीतिक रोटियां सेंक सकेंगे, लेकिन जनता ने ऐसे उम्मीदवारों को भी ठेंगा दिखा दिया. राजनीतिक दल उन्हें इसलिए टिकट देते रहे हैं, क्योंकि बाहुबली धन और बाजू के ज़ोर से चुनाव जीतने में कामयाब हो जाते थे. इस बार के चुनाव से ऐसे दलों और नेताओं को संकेत मिल गया है कि जनता अब बाहुबलियों के दवाब में आकर वोट नहीं देने वाली है.

पिछले 20 सालों में यह पहला चुनाव है, जिसमें जनता ने न सिर्फ राजनीतिक दलों के सारे समीकरणों को सिरे से नकारा, बल्कि उन्होंने अच्छे उम्मीदवारों की तरफ अपना रुझान भी दिखाया. ऐसे कई उदाहरण हैं जहां लोगों ने जातीय समीकरणों से ऊपर उठ कर साफ छवि के उम्मीदवारों का साथ दिया. जिस पार्टी ने अच्छे उम्मीदवारों को टिकट दिए उसे सबसे अधिक फायदा हुआ और जिन्होंने जातीय समीकरण और बाहुबलियों पर भरोसा किया, उन्हें जनता ने झटका दे दिया. उत्तरप्रदेश में कई सीटों पर अच्छे उम्मीदवार खड़े करने का फायदा कांग्रेस को मिला है. इस बार कांग्रेस को पिछले चुनाव से अधिक वोट मिलने के संकेत मिले. फर्रुखाबाद में सलमान खुर्शीद के ख़िलाफ़ एक मुसलमान और एक राजपूत उम्मीदवार थे. जब वोट देने का वक्त आया तो जनता ने जाति और धर्म से उठ कर अच्छे उम्मीदवार को वोट दिया.

> इस चुनाव में पहली बार ऐसा भी हुआ कि देश भर के मंदिरों-मस्जिदों और ख़ानकाहों में धर्म की शिक्षा देने वाले सनातनी साधु, संत, मौलवी और सूफ़ियों ने धार्मिक उन्माद फैलाने वाले उम्मीदवारों और पार्टियों के ख़िलाफ़ पूरे देश का दौरा किया. अलग-अलग समूहों में ये देश के भिन्न-भिन्न शहरों और कस्बों में गए और वहां अच्छे उम्मीदवारों को वोट करने की अपील की.

इस चुनाव में सबसे मजबूत और साफ संकेत मुसलमानों ने दिए. स्वाधीन भारत के इतिहास में यह पहली बार हुआ कि मौलवियों और मुसलमान व्यापारियों की बनाई पार्टियां अलग-अलग राज्यों में लोकसभा का चुनाव लड़ीं. ये तमाम पार्टियां सेकुलरिज्म को अपना आधार मानती हैं, लोकतंत्र में विश्वास जताती हैं और उनमें से कई ने ग़ैर मुस्लिमों को अपना उम्मीदवार बनाया. उत्तरप्रदेश में एक दर्जन मुस्लिम पार्टियों और सौ से ज़्यादा उम्मीदवारों ने चुनाव में किस्मत आजमाया. मुसलमानों ने पहली बार मौलवियों और मौलानाओं के निर्देश को

दरकिनार कर अपने विवेक से काम किया. एक परिपक्व राजनीतिक सोच के तहत वोट डाले. सारे बड़े मुस्लिम संगठनों में सिर्फ मिल्ली काउंसिल ने ही कांग्रेस को वोट करने की अपील की. मुस्लिम संगठन-ऑल इंडिया मिल्ली काउंसिल के महासचिव डॉ. मोहम्मद मंजूर आलम कहते हैं कि मुस्लिम राजनीतिक पार्टियों का चुनाव के समय उभरना और फिर इसमें भाग लेना आम तौर पर सेकुलर मतों के विभाजन का कारण बन जाता है, जो कि बहुत ही हानिकारक होता है.

मुसलमानों के बीच इस बार के चुनाव में इंसाफ के साथ सुरक्षा एक बड़ा मसला बनकर उभरा है. बिहार में 20 साल बाद नीतीश कुमार ने भागलपुर दंगों में शामिल लोगों को गिरफ्तार किया. कुछ पर तो आरोप साबित भी हो चुके हैं. यही वजह है कुछ मुसलमानों ने नीतीश कुमार की पार्टी जद-यू को वोट दिया. मुसलमानों के थोड़े वोट हाथ से निकलते ही लालू और पासवान के गढ़ों के भी दरकने का ख़तरा पैदा हो गया. मुस्लिम पार्टियों और उनके उम्मीदवारों के उठाए मुद्दों में घरेलू मसलों से लेकर शोषण, बेरोज़गारी, अशिक्षा और तक़लीफें भी शामिल हैं. उत्तरप्रदेश के कुछ मुसलमानों ने बातचीत में यह भी कहा कि इस बार न तो समाजवादी पार्टी और न ही बहुजन समाज पार्टी को वोट दिया, बल्कि साफ छवि वाले उम्मीदवारों को ही वोट दिया. वे यहां तक कह गए कि अगर भारतीय जनता पार्टी अपना हिंदुत्व का एजेंडा छोड़ दे और अच्छे उम्मीदवार खड़े करे तो उन्हें भी वोट डालने में परहेज नहीं होगा.

राजनीति में सांप्रदायिकता का सहारा लेने वाले संगठनों और नेताओं को भी जनता ने एक संकेत दिया. जनता ने बता दिया कि चुनाव के वक्त मंदिर-मस्जिद का राग और अन्य सांप्रदायिक मामलों से उनकी भावनाओं पर असर नहीं पड़ने वाला है और वे इन संगठनों के बहकावे में नहीं आने वाले हैं. मतदाताओं ने सांप्रदायिक ताक़तों को एक सिरे से नकार दिया. इसका असर हुआ कि चुनाव के दौरान माहौल को सांप्रदायिक बनाने वाले संगठन इस बार खुलकर सामने नहीं आए. न ही इस बार वीएचपी के आग उगलने वाले नेता नज़र आए और न ही किसी मौलवी ने फतवा देने की कोशिश की. चुनाव प्रचार की शुरुआत में वरुण गांधी के जहरीले भाषण और उसके बाद विश्व हिंदू परिषद के नेताओं के बयान से ऐसा लगा कि फिर से समाज को बांटने की तैयारी है, लेकिन जनता की प्रतिक्रिया ने समाज में जहर घोलने वाले संगठनों की हिम्मत तोड़ दी.

इस चुनाव में पहली बार ऐसा भी हुआ कि देश भर के मंदिरों-मस्जिदों और ख़ानकाहों में धर्म की शिक्षा देने वाले सनातनी साधु, संत, मौलवी और सूफ़ियों ने धार्मिक उन्माद फैलाने वाले उम्मीदवारों और पार्टियों के ख़िलाफ़ पूरे देश का दौरा किया. अलग-अलग समूहों में ये देश के भिन्न-भिन्न शहरों और कस्बों में गए और वहां अच्छे उम्मीदवारों को वोट करने की अपील की. सनातनी संतों और सूफ़ियों ने समाज में भाईचारे, रोज़गार, शिक्षा और विकास करने वाले उम्मीदवारों को समर्थन देने की अपील की. सबसे हैरान करने वाली घटना वह रही, जब कुछ हिंदू संतों ने चुनाव आयोग में जाकर शिकायत की. इन लोगों ने हिंदू धर्म के नाम पर चुनाव प्रचार करने वाली भारतीय जनता पार्टी की मान्यता रद्द करने की भी मांग की. इन सनातनी संतों और सूफ़ियों को देश भर में समर्थन मिला. इन लोगों का प्रयास इस बात का संकेत देता है कि भारत में धर्मनिरपेक्षता की जड़ें कितनी मजबूत हैं.

कुछ संकेत राजनीतिक दलों से भी मिले. पूरे 11 वर्षों बाद भारतीय जनता पार्टी ने अपने चुनाव घोषणापत्र में राममंदिर, गोहत्या, समान आचार संहिता और अनुच्छेद 370 की बात की, लेकिन चुनाव प्रचार के दौरान इसे अधिक महत्व नहीं दिया. इससे भारतीय जनता पार्टी के अंदर के मतभेद सामने आ गए. जिन लोगों ने चुनाव घोषणापत्र बनाया उनकी चुनाव-प्रचार में भूमिका नहीं थी. जिस तरह से भाजपा के प्रचार से सांप्रदायिक मुद्दे गायब हुए, उससे तो यही लगता है कि भाजपा जैसी पार्टी को भी यह समझ में आ चुका है कि देश की जनता भावनात्मक मुद्दे पर नहीं, ज़मीन से जुड़ी समस्याओं और विकास के मुद्दे पर ही वोट करेगी.

एक संकेत कांग्रेस के नेताओं ने दिया. इस चुनाव में कांग्रेस के कई नेताओं के व्यवहार से यह भी साबित हुआ है कि अपना नंबर बढ़ाने के लिए कांग्रेस के नेता स्वयं ही चापलूसी का रास्ता चुनते हैं. गांधी परिवार को खुश करने के चक्कर में ये कांग्रेस पार्टी के लिए मुसीबत खड़ी कर देते हैं. हंसराज भारद्वाज ने क्वात्रोची मामले में खुद ही सारा निर्णय ले लिया और सोनिया गांधी व कांग्रेस पार्टी के लिए मुसीबत खड़ी कर दी. राहुल गांधी की नज़र में आने के लिए उन्हें अगला प्रधानमंत्री बनाने की होड़ लग गई. कांग्रेस के नेता चुनावी रैलियों में खुल कर कहने लगे कि देश का नेतृत्व अब युवा के हाथों जाना चाहिए, राहुल गांधी प्रधानमंत्री बनेंगे.

इसके उलट सोनिया गांधी जहां गईं, वहीं मनमोहन सिंह को अगला प्रधानमंत्री बताया. राहुल गांधी खुद कहते रहे कि यूपीए के प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह हैं और वह ही बने रहेंगे.

manish.chauthiduniya@gmail.com

पश्चिम बंगाल में पचड़े अनेक

इस चुनावी घमासान के बीच उभरा सवाल पूरी राजनीति की दिशा मोड़ देने पर उतारू दिखता है. ख़ून-ख़ून होती बंगाल की ज़मीनी हक़ीकत और दिल्ली में बनने वाली अगली सरकार के निर्लज्ज से लगने वाले समीकरणों से राजनीतिक शहीदों की आत्मा को काफी कष्ट पहुंच सकता है. सबकी नज़रें ममता की ओर लगी हैं.

आसनसोल में धू-धू कर जलते माकपा समर्थकों के घर

बिमल राय

एक साल 11 माह की सानिया ख़ातून नंदीग्राम की सबसे नन्हीं राजनीतिक शहीद है. वह न किसी रैली में प्रदर्शन कर रही थी और न ज़िंदाबाद-मुर्दाबाद के नारे लगा रही थी. कथित तौर पर माकपा के कैडरों ने आठ मई यानी दूसरे चरण के मतदान के एक दिन बाद उसकी मां पर गोली चलाई. वह मां की गोद में थी और मारी गई. मां आलिया बीवी का गुनाह बस इतना था कि वह माकपा कैडरों की मनाही के बावजूद वोट देने चली गई. गोली से लगे घाव का इलाज हो रहा है, लेकिन बेटी की जान की भरपाई अब वह मां पूरी ज़िंदगी नहीं कर पाएगी. बंगाल के राजनीतिक कुरुक्षेत्र में दोनों तरफ की सेनाएं तीन साल से तैनात हैं और चुनाव जैसे निर्णायक मौके पर दोनों पक्षों ने जमकर ज़ोर-आज़माइश की. एक दिन बाद नौ मई को सातेंगाबाड़ी के तृणमूल समर्थकों ने एकजुट होकर हत्यारों की तलाश शुरू की और अब्दुल्ला ख़ान और सहाउद्दीन ख़ान नाम के दो माकपा समर्थकों को पीट-पीट कर मार डाला. उनकी लाशें जादूबारीचर गांव में हुगली नदी के किनारे मिलीं. इस तरह 30 अप्रैल और सात मई को दो चरण के मतदान के दौरान ही 15 लोगों को जान गंवानी पड़ी हैं. दशकों से माकपा कैडरों के अत्याचारों से पीड़ित विपक्षी कार्यकर्ताओं में ममता ने एक नया जोश भरा है और अब वे सीना तानकर माकपा को उसी की भाषा में जवाब दे रहे हैं. आठ मई को कोलकाता में ममता ने एक जनसभा में ताक़त का जवाब ताक़त से देने के लिए अपने कार्यकर्ताओं का सलाम किया. 40 डिग्री से ज़्यादा तापमान में 84 प्रतिशत तक वोटिंग के आंकड़े से बंगाल के राजनीतिक तापमान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है.

अब तक 15

सात मई को हावड़ा के उलबेड़िया संसदीय सीट के चंद्रपुर में उपद्रवियों ने एक कथित माकपा समर्थक की गोली मारकर हत्या कर दी. मुर्शिदाबाद जिले में जंगीपुर सीट पर खारग्राम में वोट देकर घर जा रहे मनोज जमादार नामक माकपा समर्थक की गोली मार कर हत्या कर दी गई. इस वारदात में दो अन्य घायल भी हो गए. सुरी अनुमंडल के धनंजयबाटी गांव में कांग्रेस व माकपा समर्थकों के बीच संघर्ष में पांच लोग घायल हो गए. ज़्यादातर घायल कांग्रेस समर्थक हैं. वीरभूम जिले के जलालपुर गांव में 75 साल के तृणमूल समर्थक दबीर हुसैन की गोली मारकर हत्या कर दी गई. उसका गुनाह था उसके बेटे का इस माकपा बहुल इलाके में कुछ दिन पहले तृणमूल की एक विशाल रैली आयोजित कराना. हमलावरों ने जाते-जाते उसके घर को आग के हवाले कर दिया. तीसरे चरण के मतदान के दो दिन पहले हावड़ा में अज्ञात लोगों ने इस सीट से समाजवादी पार्टी के प्रत्याशी विजय उपाध्याय पर हमला कर उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया. इस तरह बंगाल में बदलाव की लहर पैदा करने वाले नंदीग्राम और सिंगुर ही वे केंद्र हैं जहां से बंगाल की विपक्षी राजनीति को ऑक्सीजन मिला है और यह तेजी से दूसरे जिलों में फैल रहा है. सात मई के दिन ही आसनसोल की कल्याणपुर बस्ती में कथित तौर पर तृणमूल समर्थकों ने पांच माकपा समर्थकों के घर जला दिए.

सबकी नज़र ममता पर

कांग्रेस के साथ तृणमूल के गठबंधन से पैदा हुआ नया जोश परिणामों पर कितना प्रभावित कर सकता है, इस प्रश्न का उत्तर देगी 16 मई की तारीख. पर इतना तय है कि उसके बाद सियासत की एक ऐसी जंग शुरू होगी जो बंगाल में बदलाव की उम्मीद करने वालों के लिए निर्णायक होगी. लाख टके का सवाल यह है कि क्या कांग्रेस व ममता आगे भी दोस्त रह सकेंगे? इस मारामारी के माहौल में उभरा यह सवाल पूरी राजनीति की दिशा मोड़ देने पर उतारू दिखता है. ख़ून-ख़ून होती बंगाल की ज़मीनी हक़ीकत और दिल्ली में बनने वाली अगली सरकार के निर्लज्ज से लगने वाले समीकरणों से राजनीतिक शहीदों की आत्मा को काफी कष्ट पहुंच सकता है. कांग्रेस अगर भाजपा को रोकने के लिए किसी भी क़ीमत पर सरकार बनाने या बनवाने के लिए मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से सहयोग लेती या देती है, तो ममता के एक बार फिर कांग्रेस का साथ छोड़ देने की संभावना है.

इस सिलसिले में सस्पेंस शुरू हुआ दिल्ली में राहुल गांधी की प्रेस कांफ्रेंस के तुरंत बाद. राहुल ने वामदलों पर डोरे डाले और फड़फड़ाने लगे ममता के नथुने. एक निजी टीवी चैनल से ममता ने साफ कहा कि अगर कांग्रेस सरकार बनाने के लिए माकपा का सहयोग लेती है, तो वह गठबंधन से बाहर आ जाएंगी. ममता के सहयोगियों-पार्थ चटर्जी और दिनेश त्रिवेदी-ने वाम के प्रति राहुल के बयान पर नाखुशी ज़ाहिर की थी और केंद्र में ऐसे किसी भी गठबंधन का विरोध किया था जिसमें कांग्रेस और माकपा शामिल हों. इस बयान के तुरंत बाद पहली प्रतिक्रिया प्रणव मुखर्जी की ओर से आई कि ममता से गठबंधन की यह शर्त नहीं थी. बंगाल प्रभारी केशव राव ने कहा कि हम माकपा व तृणमूल दोनों को साथ रखना चाहते हैं. बंगाल में सब ममता का मूड जानते हैं. कांग्रेस की चिरकी में आग लगी और दिल्ली से दो अज्ञात बड़े लोगों के फोन आए. कांग्रेस की घबराहट देख ममता ने कोलकाता में आयोजित एक जनसभा में सफाई दी कि राहुल के बयान से गठबंधन पर कोई असर नहीं पड़ा है. ममता के बग़ावती तेवर से गदगदाई भाजपा का जोश तब ठंडा पड़ गया, जब ममता ने इसी जनसभा में पार्टी पर वोटों का विभाजन कर वाममोर्चा प्रत्याशियों को फायदा पहुंचाने का आरोप लगा दिया. उन्होंने सीपीएम पर तृणमूल-कांग्रेस गठबंधन की छवि ख़राब करने के लिए अभियान चलाने का आरोप लगाया. इसके अलावा ममता ने पश्चिम बंगाल की जनता से कहा कि वे इससे गुमराह न हों. प्रदेश कांग्रेस के कार्यकारी अध्यक्ष प्रदीप भट्टाचार्य ने भी कहा कि तृणमूल कांग्रेस और कांग्रेस के बीच गठबंधन को लेकर कोई समस्या नहीं है. उन्होंने तो सारा दोष मीडिया पर थोप दिया. इस बीच दो बातें हुईं. आठ मई को कोलकाता में लालकृष्ण आडवाणी की सभा हुई, जिसमें उन्होंने ममता के ख़िलाफ़ एक शब्द भी नहीं कहा. इसी तरह दस मई को महानगर में शत्रुघ्न सिन्हा ने ममता की तारीफ़ की. पहले चरण के चुनाव से ही कांग्रेस के ख़िलाफ़ कड़ा रुख दिखाने वाने माकपा महासचिव प्रकाश करात ने कहा कि इस बार 2004 से अलग स्थितियां हैं और कांग्रेस को समर्थन देना पड़ सकता है. सीधी राजनीतिक चाल है कि कांग्रेस को समर्थन देकर या इससे समर्थन लेकर माकपा ममता को अलग-थलग करना चाहती है. अगर ऐसा होगा तो 2011 के विधानसभा चुनावों में वाममोर्चा लगातार सातवीं जीत के प्रति आश्वस्त हो सकता है. वैसे खंडन-मंडन की राजनीति और सस्पेंस का माहौल कम से कम 15 तक बरकरार रह सकता है. पर 16 मई के बाद के समीकरण विपक्षी योद्धाओं को इस पार या उस पार, किसी एक तरफ खड़ा होने के लिए ललकारेंगे. ऐसे में देखना रोचक होगा कि ममता अगले विधानसभा चुनावों में वाममोर्चा की 32 सालों से चली आ रही सरकार को निर्णायक झटका देने के लिए कांग्रेस का साथ देते रहने का गरल पीती हैं या अपने आत्मविश्वास के बूते एक बार फिर रवींद्र बाबू का गीत गुनगुनाती हैं-*एकला चलो रे.*

बुद्धदेव भट्टाचार्य

ममता बनर्जी

feedback.chauthiduniya@gmail.com

मध्यप्रदेश में कुछ भी मुमकिन

इंदू सिंह

मध्यप्रदेश की 29 लोकसभा सीटों पर आधी जनता ने अपने प्रत्याशी चुन लिए हैं. प्रदेश के लोकतंत्र के लिए राहत की बात यह है कि पिछले तीन लोकसभा चुनावों से लगातार गिर रहे वोटिंग प्रतिशत को और नीचे जाने से संभाल लिया गया है. यहां 1998 में 61.74 प्रतिशत, 1999 में 45.73 और वर्ष 2004 में हुए 14वें लोकसभा चुनाव में महज 48.09 प्रतिशत मतदाताओं ने ही अपने मताधिकार का इस्तेमाल किया था. लेकिन इस बार यह प्रतिशत बढ़कर 50 तक चला गया है. ज़ाहिर है कि लोगों को अपने नेताओं पर भले ही पूरा भरोसा न हो, लेकिन उन्हें अपने लोकतांत्रिक अधिकारों और कर्तव्यों की पूरी जानकारी है और वे उन्हें निभाना भी जानते हैं.

यह अलग बात है कि प्रदेश की दो बड़ी पार्टियों-कांग्रेस और भाजपा-ने मतदान के इस रुझान को अपने पक्ष में मानते हुए अपने-अपने स्तर पर खुशफहमियां पाल ली हैं.

प्रदेश में भिंड, दमोह, होशंगाबाद, भोपाल, विदिशा, शाजापुर, इंदौर, उज्जैन और मंदसौर यानी नौ लोकसभा सीटें ऐसी हैं जिनपर भाजपा अगर जीत गई तो लगातार सात बार जीत हासिल करने का एक रिकार्ड बना सकती है. इसी तरह मुरैना, सागर, सतना, शहडोल, जबलपुर और खंडवा यानी छह सीटों पर वह जीतकर लगातार पांचवीं जीत हासिल कर सकती है. लेकिन ये कुल मिलाकर 15 सीटें ही होती हैं और इनमें भी इंदौर, उज्जैन और शहडोल की सीटें ऐसी हैं, जहां भाजपा को लगातार छह लोकसभा चुनावों में जीत हासिल करने के बावजूद विकास के कामों में संतोषजनक नतीजे न दे पाने का ख़ामियाजा भुगतना पड़ सकता है. बची 12 सीटों में भिंड, दमोह, सतना और मंडला यानी चार सीटें ऐसी हैं, जिनमें पिछली दो लोकसभा चुनावों में विजयी भाजपा और पराजित कांग्रेस प्रत्याशियों द्वारा हासिल किए गए वोट में दो से पांच प्रतिशत का ही अंतर था. ज़ाहिर है, इस बार कई सीटों पर मामूली अंतर से पासा पलट भी सकता है. उदाहरण के तौर पर भिंड, जहां 1999 में 51.12 फीसदी मतदान हुआ था और भाजपा ने 40.94 फीसदी मत लेकर जीत हासिल की थी. तब कांग्रेस ने 32.84 फीसदी मत पाए थे. लेकिन पिछले लोकसभा

चुनाव में यह अंतर आठ फीसदी से घटकर एक फीसदी ही रह गया, जब 43.68 फीसदी मतदान में से भाजपा 38.71 और कांग्रेस 37.56 फीसदी वोट पा सकी. यहां 1.15 फीसदी के मामूली अंतर से कांग्रेस हार गई. लेकिन इस बार भिंड में मतदान प्रतिशत और नीचे गिर गया है. भिंड के 34.88 फीसदी मतदाताओं ने ही इस बार मताधिकार का प्रयोग किया है. यहां अगर कांग्रेस प्रत्याशी डॉ. भागीरथ प्रसाद वोट प्रतिशत में थोड़ी भी बढ़ोतरी कर पाए तो पार्टी जीत का स्वाद चख सकती है.

इसी तरह सतना, जहां भाजपा लगातार चार बार जीत हासिल कर चुकी है, इस बार पिछली बार की तुलना में आठ फीसदी ज़्यादा मतदान हुआ है. यहां भाजपा के गणेश सिंह पिछली बार हुए 46.09 फीसदी मतदान में से 39.26 फीसदी लेकर विजयी रहे थे. कांग्रेस के राजेंद्र कुमार को 25.57 फीसदी वोटों पर ही संतोष करना पड़ा था. इस बार यहां 54.65 फीसदी वोट पड़े हैं और अगर कांग्रेस प्रत्याशी सुधीर सिंह तोमर पार्टी के खाते में वोटों का प्रतिशत कुछ बढ़ा पाने में कामयाब रहे तो भाजपा के गणेश सिंह संभवत: पार्टी को लगातार पांचवीं जीत का स्वाद चखा पाने में नाकाम रहें. उधर, शहडोल में भी पिछले दो चुनावों में भाजपा और कांग्रेस की जीत के बीच केवल तीन से पांच फीसदी का ही अंतर रहा है. इस बार यहां 48.72 फीसदी वोट पड़े हैं और अगर कांग्रेस के पूर्व केंद्रीय मंत्री दलबीर सिंह की विधवा राजेश नंदिनी अपने वोटों में पिछली बार के 35.47 फीसदी को पांच फीसदी भी बढ़ा पाईं तो यह सीट फिर से कांग्रेस की झोली में जा सकती है. इसी तरह बालाघाट सीट इस बार एक सूरत में कांग्रेस के पाले में जा सकती है, जब कांग्रेस प्रत्याशी विश्वेश्वर भगत 1999 में मिले 39.9 फीसदी वोटों का हिस्सा इस बार भी बरकरार रख सकें. क्योंकि यहां पिछली बार भाजपा के गौरीशंकर बिसेन ने महज 31.84 फीसदी वोट हासिल कर जीत हासिल की थी. हालांकि इस बार भाजपा ने यहां केडी देशमुख पर दांव लगाया है और कांग्रेस को भरोसा है कि इस बार यहां हुए 57 फीसदी वोटों में भगत जीत लायक वोट बटोर लेंगे. परिसीमन के बाद अब सिवनी भी बालाघाट लोकसभा सीट में शामिल हो गई है. पिछले नौ लोकसभा चुनावों में भाजपा और कांग्रेस ने यहां चार-चार बार जीत हासिल की है. ज़ाहिर है कि परिसीमन के बाद यहां वोटरों के मूड और रुझान में कुछ अंतर तो आएगा ही. ऐसे में भगत अगर कांग्रेस के पारंपरिक वोटरों को अपने पक्ष में करने में कामयाब रहे तो यह सीट निकाल सकते हैं.

उधर आदिवासी सीट मंडला में, जहां फग्गन सिंह कुलस्ते को लगातार पांचवीं बार जीत की उम्मीद है, आंकड़े बताते हैं कि पिछले दो लोकसभा चुनावों में भाजपा का मत प्रतिशत 48.11 से गिरकर 40.47 हो गया है. वहीं 1998 और 99 में कांग्रेस ने यहां अपने मत प्रतिशत में वृद्धि की है. हालांकि पिछले चुनाव में गोंडवाना गणतंत्र पार्टी के हीरा सिंह मरकाम के चुनाव मैदान में कूदने से कांग्रेस के वोटों में खासी गिरावट आई थी और उसे 16.98 फीसदी वोटों के साथ तीसरे नंबर पर रहकर संतोष करना पड़ा था. लेकिन गोंडवाना पार्टी अपना प्रभाव बनाए रखने में लगभग नाकाम रही है और इस बार यहां हुए 54.18 फीसदी मतदान में से अगर कांग्रेस के बसोरी सिंह मसराम पार्टी के परंपरागत वोटरों को अपने पक्ष में करने में कामयाब हुए हों तो पार्टी एक बार फिर यहां अपना कब्जा जमा सकती है.

यह बात तो उन सीटों की हुई जिनपर भाजपा ने पिछले कई चुनावों में जीत हासिल की है और इस बार भी जीत की उम्मीद पाले बैठी है. लेकिन अब तक वोटिंग प्रतिशत और वोटरों के रुझान से साफ तौर पर कहा जा सकता है कि इंदौर, उज्जैन, शहडोल, भिंड, बालाघाट, मंडला, सतना यानी कम से कम सात लोकसभा सीटें ऐसी हैं जो आसानी से भाजपा की झोली में जाती नहीं दिख रहीं. वहीं छिंदवाड़ा प्रदेश की एकमात्र ऐसी सीट है, जिस पर कांग्रेस ने लगातार नौ बार जीत का रिकार्ड दर्ज किया है और केंद्रीय मंत्री कमलनाथ को उम्मीद है कि वह इसे बरकरार रखेंगे. यह अलग बात है कि पिछले दो लोकसभा चुनावों में कमलनाथ के वोटों में 23 फीसदी की बड़ी गिरावट दर्ज की गई है. 1999 में हुए 60.31 फीसदी वोटिंग में कमलनाथ को 63.98 फीसदी वोट मिले थे जो पिछले चुनाव में हुए 65.9 फीसदी मतदान में घटकर 40.89 तक पहुंच गए. लेकिन भाजपा का वोट प्रतिशत इस दौरान 33.75 से घटकर 32.45 हुआ, यानी भाजपा को कांग्रेस के इस घटे वोट प्रतिशत का कोई फायदा नहीं हुआ. इस बार छिंदवाड़ा में 64.01 प्रतिशत मतदान हुआ है और कमलनाथ को पहले से कुछ कम वोट भी मिले हों तब भी उनकी जीत लगभग तय मानी जा रही है. इनके अलावा ग्वालियर, गुना और झाबुआ तीन ऐसी सीटें हैं जहां से कांग्रेस की जीत तय मानी जा रही है.

वहीं खजुराहो, रीवा, खरगौन और धार में अभी तक के चुनावों में कांग्रेस और भाजपा के बीच जीत-हार का अंतर बहुत अधिक का नहीं रहा है. इससे इन सीटों पर किसी उलटफेर की संभावना से इनकार नहीं किया जा सकता. खजुराहो में पिछला लोकसभा चुनाव भाजपा के रामकृष्ण कुसमारिया ने 43.04 फीसदी वोट हासिल कर जीता था, उधर, सीधी एक ऐसी सीट है जहां जीत की राह काफी टेढ़ी-मेढ़ी गलियों से निकलती नज़र आ रही है. यहां कांग्रेस और भाजपा दोनों को पीछे छोड़कर अगर केंद्रीय मंत्री अर्जुन सिंह की बेटी व बागी प्रत्याशी वीणा सिंह ने जीत हासिल कर ली तो उनका चुनाव चिह्न नारियल अपने को श्रीफल कहलाना चरितार्थ कर लेगा.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

क्या हुआ बिहार के लाल गढ़ों का?

प्रयाग अकबर

आरा बिहार में धूल से भरा कस्बानुमा एक छोटा-सा शहर है. पटना से पश्चिम. इसके बीच से गुज़रने वाली रेल लाइन के पीछे एक अहाता है, जंग खाए लोहे के फाटक वाला. यहीं पर एक छोटा सा समूह बैठा था- मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का. वे भैंस के गाढ़े दूध वाली चाय के ऊपर चुनावी चकल्लस भी कर रहे थे. वहीं एक कोने में एक गाय अधमुंदी आंखों से उनको निहार रही थी, जबकि एक छोटी सी लड़की भीगे कपड़ों को सूखने के लिए फैला रही थी. इस निर्वाचन क्षेत्र से भाकपा-माले के उम्मीदवार अरुण सिंह काफी अधिकार से हमें बता चुके हैं कि इस सीट का समीकरण क्या है. उन्होंने कहा कि इस जगह दूसरी पार्टियों ने केवल बंदूक की ताक़त रखनेवाले उम्मीदवारों को उतारा है. जद-यू का उम्मीदवार एक राजपूत था, जबकि लोजपा ने भी ठाकुर को उतारा है. बसपा का भी उम्मीदवार ठाकुर है. अरुण सिंह ने अपनी योजना के बारे में हमें बताया था कि वह गांव-गांव जाकर दलितों और यादवों से मिलेंगे. उनको बताएंगे कि उन्होंने किस तरह से तथाकथित उच्च जातियों के शिकंजे से मुक्त होने के लिए लड़ाई की थी और अब वही ताक़त वापस उन्हीं सवर्णों को नहीं सौंपनी है. यह बिहार का सच है. यहां मार्क्सवादियों ने भी सीख लिया है कि जाति के आधार पर ही चुनावी राजनीति में फतह मिल सकती है.

जातिगत विभाजन यहां गहरे तक मौजूद है. वाम को यहां फायदा तयशुदा तौर पर है. फायदा इस बात का कि उसके संबंध काफी समय से बिहार की तथाकथित नीची जातियों से बेहतर हैं. बिहार के अलग हिस्सों में, भाकपा (माले), भाकपा और माकपा (भले ही बाक़ी दोनों की तुलना में कम) ने राज्य की ग्रामीण और सबसे वंचित तबके के साथ पिछले 50 वर्षों से काम किया है. कुर्ताधारी वामपंथी कार्यकर्ताओं ने मार्क्स को हिंदी में समझने और समझाने का काम किया है, सफाई और बिजली की स्थानीय समस्याएं सुलझाने का काम किया है और सवर्णों की हिंसक निजी सेनाओं जैसे रणवीर सेना या किसान संघ का सामना किया है. किसानों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़े रहे हैं वे. बदले में उन्हें बहुत कम या न के बराबर राजनीतिक तौर पर इनाम मिला है.

आरा के पास के एक गांव में हमारी मुलाकात राजेश नाम के 60 वर्षीय दलित खेतिहर मजदूर से होती है. लंगोटी पहनने वाला यह मजदूर हमें बताता है कि उसे अच्छी तरह याद है कि दस और पंद्रह साल पहले भी वे (सवर्ण, जो ज़मीन के मालिक थे) 100-150 लोगों का गिरोह उनके गांव में भेजते थे. हथियारों से लैस ये गुंडे दर्जनों लोगों की हत्या करते थे. बावजूद इसके, लालू प्रसाद इन्हीं भूमिहारों (बिहार की ताकतवर सवर्ण जाति) को चुनाव लड़ाते और जितवाते रहे. उस वक्त भाकपा (माले) के लोग ही भूमिहीनों के साथ थे और उसी ने खेतिहरों को लड़ना सिखाया.

1980 और 90 के दशक में, बिहार में दोनों ही पक्षों के बीच कभी भी और कहीं भी हिंसक झड़पें होती रहती थीं. इसके बाद ज़मींदार और भाकपा (माले) के कार्यकर्ता अपने-अपने पक्ष के मृतकों की संख्या गिनते थे. उस समय केंद्रीय सरकार ने भाकपा (माले) को एक नक्सली संगठन बताते हुए प्रतिबंधित कर दिया था. यह ऐसी विडंबना थी, जिसे अरुण सिंह आज भी विरोधाभास करार देते हैं. वह पूछते हैं कि आख़िरकार नक्सली का मतलब क्या होता है? अरुण के मुताबिक तो आज भी वह ठीक वही काम कर रहे हैं, जो बीस साल पहले कर रहे थे. इलाके के लोगों के साथ काम करने का उनका जज्बा आज भी बरकरार है. अरुण को यकीन है कि अगली लोकसभा में एक सदस्य के तौर पर वह भी बैठे होंगे. वह यह भी मानते हैं कि सारे तमगे तो लोगों के दिए हुए हैं और उनकी दिमागी उपज हैं. उनका ज़मीनी हक़ीकत से कोई वास्ता नहीं है.

1980 और 90 के दशक में, बिहार में दोनों ही पक्षों के बीच कभी भी और कहीं भी हिंसक झड़पें होती रहती थीं. इसके बाद ज़मींदार और भाकपा (माले) के कार्यकर्ता अपने-अपने पक्ष के मृतकों की संख्या गिनते थे.

वाम की विफलता अपनी संस्थागत उपस्थिति को बिहार के शहरी और ग्रामीण इलाकों में बनाए नहीं रख पाने की है. पटना के लगभग खाली पड़े भाकपा कार्यालय में पार्टी की राज्य इकाई के पदाधिकारी सहजन राय हमें बताते हैं कि उनकी एक भूल उन्हें महंगी पड़ गई. 1991 में उनकी पार्टी की राज्य इकाई लालू के साथ चली गई और इस वजह से उनकी पार्टी का एक बड़ा समर्थक वर्ग उनसे अलग हो गया. सवर्णों का मोहभंग इस वजह से हुआ कि वे जाति-आधारित आरक्षण से डर गए थे. उनकी सोच यह हो गई कि अब उनके लिए कुछ नहीं बचेगा. दूसरी तरफ, ग़ैर सवर्णों ने दूरी इस वजह से बरत ली क्योंकि लालू उनको काफी कुछ देने का वायदा कर रहे थे. पटना के माहिर राजनीतिक लेखक यूएन मिश्र भी इसी बात से इत्तफाक रखते हुए कहते हैं कि 1990 के शुरुआती वर्षों में सामूहिक जागृति के साथ ही वाम की ज़मीन दरक गई. 1991 में वे राज्य में पांच लाख वोटों तक का दावा कर सकते थे. मंडल मुहिम के साथ ही उन्होंने सवर्णों और ग़ैर सवर्णों दोनों का समर्थन खो दिया. इसलिए कि वे कोई तयशुदा फ़ैसला नहीं कर सके थे. इसके बाद मंदिर आंदोलन के उभार से हिंदू वोटों का विभाजन हुआ. इसमें ग़ैर सवर्ण और सवर्ण दोनों ही शामिल थे. वाम दलों को यह समझ में ही नहीं आया कि दूसरी पार्टियां किस तरह का राजनीतिक खेल खेल रही थीं.

इसके अलावा बिहार में वाम दलों को नेतृत्व की भी समस्या झेलनी पड़ी. 1970 और 1980 के दशक में जब चमत्कारी और आत्मत्यागी नेता जैसे विनोद मिश्र वगैरह रणनीति तय कर रहे थे, तब वे राज्य के युवाओं को अपनी ओर खींचने में सक्षम थे. लेकिन बिहारी युवाओं ने लालू की पार्टी राजद और शरद-नीतीश के जद-यू में अधिक फायदा देखते हुए खुद को मार्क्सवादी विचारधारा से अलग कर लिया, क्योंकि फायदा तुरंत और अधिक था. अभी की हालत में पटना के साथ ही सारे ग्रामीण इलाकों में हरेक वाम दल के पदाधिकारी की उम्र 40 से 50 साल के बीच की है. इसी वजह से इन दलों में चीज़ें आराम से चलती हैं, क्योंकि इस उम्र तक पहुंच कर लोगों के अंदर वह आग नहीं बची रह जाती, जिससे शोषक ज़मींदारों के ख़िलाफ़ केवल लाठी और अपनी विचारधारा के साथ संघर्ष कर सकें. हालात यहां तक हो गए हैं कि अब पार्टी को अपने कट्टर समर्थकों के लिए राज्य से बाहर देखना पड़ता है. इसी बात को अरुण सिंह के साथ चल रही एक महिला समर्थक कमला कुछ इस तरह कहती हैं- अब हमारे पास पहले जैसी ऊर्जा नहीं है. हालांकि हमें कहा गया है कि जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय जैसी जगहों से छात्र हमारी मदद के लिए आते रहेंगे.

नया गठबंधनः एक आख़िरी उम्मीद

पूरे देश में वाम दलों के बीच गठबंधन ने कुछ आशावाद जगाया है, हालांकि विरोधी अब भी इसे भटकाव ही कहते हैं. वैसे, पहली बार बिहार में वाम दलों के तीनों मुख्य धड़े एक ही प्लेटफार्म पर खड़े होकर लड़ रहे हैं. हरेक सीट के लिए वाम का एक उम्मीदवार यह तय कर देता है कि वे एक-दूसरे के वोट नहीं काटेंगे. जिन कामरेडों ने पहले एक-दूसरे के वोट-बैंक में सेंध लगाई होगी, अब वही एक-दूसरे के साथ काम कर रहे हैं. उनका एकमात्र लक्ष्य है-लोकसभा में अधिक से अधिक वाम प्रत्याशियों को पहुंचाना. भाकपा (माले) के बिहार राज्य के सचिव नंदकिशोर बताते हैं कि तीनों वाम दलों का गठबंधन ज़रूर ही असरकारी होगा. उनका आकलन है कि लालू तो यूपीए के ख़िलाफ़ जा रहे हैं, जबकि नीतीश राजग के विरुद्ध लड़ रहे हैं. लोग यह सब देख चुके हैं और यह भी देख रहे हैं कि वाम के तीनों धड़े एक होकर विकास की बुनियाद रखने की कोशिश कर रहे हैं. नंदकिशोर मानते हैं कि पिछले आम चुनाव (2004) के मुक़ाबले इस बार वाम दल ज़रूर बेहतर करेंगे (पिछली बार उनकी कोई सीट नहीं थी). ज़ाहिर तौर पर, वाम दलों के बीच विचारधारा के स्तर पर एक उभार ज़रूर आया है, लेकिन उनके विचार पहले इतने अलग रहे हैं कि चुनाव के समय सीधे तौर पर एक-दूसरे के धुर विरोधी नज़र आते हैं. हालांकि, मतों की पुरानी कहानी तो वाम दलों के आशावादियों को ग़लत ही साबित करेगी. बिहार में मतों का विभाजन इतना तगड़ा है कि इलाके साफ तौर पर भाकपा और भाकपा (माले) के गढ़ में तब्दील हो चुके हैं. भाकपा की राज्य में बहुत ही कम मौजूदगी है. यह इस बंटवारे की वजह से ही है कि वाम दलों के प्रत्याशियों ने बहुत कम बार ही एक-दूसरे के ख़िलाफ़ जम कर लड़ाई की है. इसी वजह से बिहार में वाम दलों का यह तर्क गले के नीचे नहीं उतरता कि वाम दल एक-दूसरे के वोट में सेंधमारी नहीं करेंगे. इसके अलावा आरा जैसी जगहों में-जो भाकपा (माले) का गढ़ है- दूसरे वाम दलों का काडर दिखता भी नहीं है. इसके उलट बेगूसराय जैसी जगहों पर-जिसे कभी बिहार के लेनिनग्राद के नाम से जाना जाता था-केवल भाकपा ने अपनी ज़मीन बचाई रखी है. इस संवाददाता को पार्टियों के काडर पार्टी लाइन से अलग हटकर काम करते तो नहीं ही दिखे. अंतिम तौर पर यह कहा जा सकता है कि वाम दलों की यह एकता केंद्र की सत्ता में एनडीए और यूपीए के विरोध के धरातल पर ही खड़ी है. अब इस तथाकथित एकता से उनकी कुछ सीटें बढ़ सकती हैं कि नहीं, यह तो 16 मई को ही पता चलेगा. जैसा कि पुराने भाकपा नेता सहजन राय कहते भी हैं कि जब उन्होंने पार्टी ज्वाइन की थी, तब वे लोग मुख्य ताक़त हुआ करते थे. उनको याद आता है कि 1956 में *स्टेट्समैन* ने अपनी ख़बर का शीर्षक दिया था-बिहार के ऊपर चमकता लाल सितारा. फिलहाल तो वे दिन क़ाफी दूर दिख रहे हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चुनावी हलचल से दूर

छत्तीसगढ़ का नक्सली इलाका बाहर वालों की पहुंच से दूर है. बाहरी लोगों में नेता भी शामिल हैं. बस्तर नक्सलियों का गढ़ है और यहां चुनाव प्रचार की कोई हलचल नहीं दिखी. गांव वालों को इस इलाके के प्रत्याशियों या राजनीतिक दलों के बारे में बहुत कम या न के बराबर जानकारी थी. कई तो यह भी नहीं जानते कि 2004 के चुनाव में इस इलाके से कौन से उम्मीदवार जीते थे, क्योंकि उनके प्रतिनिधि कभी इस इलाके में दिखे ही नहीं. दंतेवाड़ा से बीजापुर तक का सफ़र मानो समय में पीछे की तरफ यात्रा करना है. कहीं भी सरकार नाम की किसी संस्था या चीज़ के दर्शन नहीं होते. अवापल्ली, बासगुड़ा और लिंगागिरी जैसे गांवों में तो अधिकतर गांववालों के नाम भी मतदाता सूची से ग़ायब थे.अवापल्ली जिला मुख्यालय बीजापुर से 57 किलोमीटर दूर है और यह इलाका नक्सली-माओवादी प्रभाव वाले गांवों से सटा है. यहीं के निवासी राशिद बेग ने कहा कि उन लोगों का यक़ीन व्यवस्था पर से उठ चुका है. उनके इलाके के उम्मीदवारों की बात तो छोड़िए, इन गांववालों को यह भी मालूम नहीं था कि उनके इलाके में चुनाव किस तारीख़ को होने जा रहे हैं? वहीं खड़े गुरला भावुक होते हुए कहते हैं कि सरकार ने उनके लिए, उनकी सुरक्षा के लिए कुछ भी तो नहीं किया है.

पिछले विधानसभा चुनाव में भी इस इलाके के किसी निवासी ने वोट नहीं डाला. हालांकि, कुछ लोग याद करते हुए बताते हैं कि उस बार बांसगुड़ा में नदी के पार एक पोलिंग बूथ तो बनाया गया था, लेकिन नक्सलियों और सलवा जुडुम कार्यकर्ताओं के बीच की गोलीबारी में फंसने के डर से लोग गांव छोड़ कर ही चले गए. यहीं के ग्रामीण बुराथ चिल्बुनाथ आश्चर्य से पूछते हैं कि अगर गांव में कोई था ही नहीं, तो फिर पोलिंग बूथ बनाने की ज़रूरत क्या थी? बांसगुड़ा और लिंगागिरी तक पहुंचने के लिए एक पुल पार करना होता है. यहां कई बार सुरक्षा बलों पर नक्सली हमला करते हैं.

बासगुड़ा कभी एक धनी गांव हुआ करता था और बस्तर इलाके का दूसरा सबसे बड़ा बाज़ार भी. अब यह उजाड़ है. अधिकतर घर इस कदर टूट-फूट चुके हैं कि मरम्मत के लायक नहीं बचे. बची-खुची दीवारों पर माओवादी नारे लिखे हैं. स्थानीय लोग बताते हैं कि पहली बार 2006 में माओवादियों ने इस इलाके पर हमला किया था और उसके बाद तो सीआरपीएफ और सलवा जुडुम का भी कहर इन इलाकों को झेलना पड़ा. गांववालों ने अपने घर छोड़ दिए और उनको आधिकारिक तौर पर आतंरिक तौर से विस्थापित लोग (आईडीपी) करार दिया गया. इनमें से अधिकतर अवापल्ली और बीजापुर चले गए, जहां वे एक कमरे वाली झोपड़ी में अपने दिन गुज़ार रहे हैं. 70 साल के बूढ़े शेख हैदर हमें बताते हैं कि चुनाव से उनके दिन नहीं फिरने वाले. सरकार ने उनके लिए कुछ भी नहीं किया है और राजनीतिक दल तो उनके अस्तित्व से भी अनजान हो गए हैं. शेख बताते हैं कि अगर उनमें से कुछ लोग तीन वर्षों के बाद अपने घर लौटने में सफल हो सके हैं तो वह एक स्थानीय गैर-सरकारी संस्था की वजह से ही, न कि सरकार की बदौलत. हैदर अपनी इच्छा बताते हुए कहते हैं कि वे लोग वोट देना चाहते हैं, लेकिन जब उनका नाम ही मतदाता सूची में नहीं है, तो फिर वे वोट कैसे दे सकते हैं? उनके पास मतदाता पहचान पत्र भी नहीं है, न ही किसी अधिकारी ने उनका नाम सूची में जोड़ने की जहमत उठाई है. इन गांववालों ने सरकार को कई बार याचिका भी दी है. सरकार को पता है कि ये लोग कहां रह रहे हैं और अगर सरकार चाहती है कि वे वोट दें, तो उनके नाम मतदाता सूची में जुड़वाने की जिम्मेदारी सरकार की है. बासगुड़ा से ही कुछ किलोमीटर दूर ही लिंगागिरी है, जिस पर 2006 के आख़िरी महीने में सलवा जुडुम के स्वयंसेवकों और सीआरपीएफ ने धावा बोला था. गांव वाले जंगलों के रास्ते भागकर आंध्र प्रदेश के चेरला में चले गए. उनमें से अधिकतर अब लौट आए हैं, हालांकि उनमें से 105 को पुलिस ने पकड़ रखा है और लिंगागिरी में घुसने नहीं दिया. 2006 में ही गंतालाल राजू की बहन को बलात्कार के बाद गोली मार दी गई. उसके पिता को भी स्पेशल पुलिस अफसर (एसपीओ) ने लिंगागिरी में ही पीट-पीट कर मार डाला. वह चेरला भाग कर आईडीपी के तौर पर रहा. वह शिकायती लहजे में कहता है कि सरकार ने उसके साथ जो नाइंसाफी की है, उसके बाद वह आख़िर किसी भी सरकार में रुचि क्यों रखेगा? बसंती मोतीलाल ने भी अपने पति को खोया है और अब उसका कोई भी नहीं है. वह कहती है कि सरकार के कुछ अच्छे लोगों की मदद से उसने सरकारी मदद पाने की कोशिश की, लेकिन उसे कुछ भी नहीं मिल सका. बसंती के मुताबिक वे निर्वाचित प्रतिनिधि ही तो थे, जिन्होंने उसके पति, जानवरों और पड़ोसियों की हत्या करने के लिए लोग भेजे.

इन गांवों से आगे वे इलाके हैं, जो पूरी तरह से नक्सली-माओवादी नियंत्रण में हैं. बैलाडीला खदानों से बस थोड़ी ही दूरी पर इन इलाकों में कुआकोंडा ब्लॉक, हिरोली गांव, गूमियापाल और सामलवर शामिल हैं. मतदान के कुछ ही दिन पहले पुलिस इन गांवों में घुसी. अगले दिन पुलिस ने गांववालों को बताया कि उन्होंने तीन नक्सलियों को इनकाउंटर में कुटरेम और सामलवर के बीच मार गिराया है. सामलवर के निवासी बताते हैं कि जिन तीन लोगों को नक्सली बताकर मार दिया गया, वे तो पड़ोस की शादी में शिरकत करने आए थे. तीन मृतकों में एक 19 वर्षीय चानु मांडवी भी था, जो जल्द ही नेशनल मिनरल डेवपलपमेंट कॉरपोरेशन में काम शुरू करने वाला था. इस नौकरी के लिए उसे पुलिस से प्रमाणपत्र भी मिल चुका था. हिरोली गांव के लोग उसका शरीर लेने के लिए पुलिस स्टेशन भी गए. हालांकि, कई गांववाले नाम न छापने की शर्त पर यह भी स्वीकारते हैं कि मारे गए दूसरे दोनों ही नक्सली थे और किसी ने भी उनके शरीर पर दावा नहीं किया. यहां पर राजनीतिक पार्टी के नाम पर भाकपा के ही कुछ लोग बचे हुए हैं, जिनका अब भी इस इलाके में कुछ प्रभाव बचा हुआ है.

इन गांवों में हालांकि किसी ने भी न तो वोट दिया और न ही किसी की ऐसी इच्छा थी. गांव में से अगर किसी को वोट देने की इच्छा भी थी, तो नक्सली-माओवादियों के डर से उसने वोट नहीं दिया. अचरज की बात तो यह है कि चुनाव बहिष्कार की नक्सलियों की अपील का प्रभाव भाकपा के समर्थन वाले इलाकों में अधिक मजबूती से पड़ता है. भाजपा और कांग्रेस के समर्थक छोटे कस्बों और शहरों में हैं और दोनों ही पार्टियों को गांवों में वोट न पड़ने से अपनी स्थिति मजबूत होने की आशा बंधी है. हालांकि धुरली और भंसी (एस्सार के स्टील प्लांट की प्रस्तावित जगह) में कहानी कुछ और ही है. इस प्रोजेक्ट को भाजपा के मुख्यमंत्री रमन सिंह के प्रिय प्रोजेक्ट के तौर पर देखा जा रहा है और इसे स्थानीय कांग्रेसी लोगों का भी समर्थन है. वरिष्ठ कांग्रेसी नेता ने कई बार इलाके का दौरा कर लोगों को प्लांट के लिए अपनी ज़मीन देने की अपील की है. यहां साफ तौर पर बंटवारे को देखा जा सकता है, क्योंकि कुछ गांववाले पुनर्वास पैकेज लेना चाहते हैं, जबकि बाक़ी कंपनी में अपना शेयर चाहते हैं. वैसे, कई का कहना है कि वे अपने पुरखों की ज़मीन छोड़ने से बेहतर मर जाना पसंद करेंगे. नक्सलियों ने वैसे दो ग्रामीणों की हत्या कर दी, जिन्होंने पुनर्वास पैकेज को स्वीकार कर लिया था. भाकपा एकमात्र ऐसी पार्टी है, जो गांववालों के प्रतिरोध में उनके साथ है. नतीजा यह हुआ कि इस चुनाव में धुरली में गांववालों ने ठीक-ठाक संख्या में वोट डाले. भंसी में भी लोगों ने वोटिंग में शिरकत की.

राजधानी रायपुर से 150 किलोमीटर दूर कांकेर में इकचापुर गांव के सरपंच सुवारम कुरुगी ने हमें बताया कि उनके गांव में कोई भी नक्सलियों का समर्थन नहीं करता. कुरुगी बताते हैं कि उन्होंने और उनके लोगों ने चुनाव में शिरकत की. सरकार आख़िरकार यहां विकास का इतना काम जो कर रही है. वन विभाग के एक कर्मचारी सुकलाम स्वराम बात को आगे बढ़ाते हुए कहते हैं कि चुनाव लोगों को ताक़त देता है. बिना चुनाव के कौन सा राजनीतिक दल लोगों की चिंता करनेवाला है? नक्सली अपनी विचारधारा पर यकीन कर सकते हैं, पर उनको लोगों को अपनी बात जबरिया मनवाने का हक़ नहीं है.

सब कुछ के बावजूद, सच तो यही है कि कहीं न कहीं लोग लोकशाही के वर्तमान स्वरूप से नाराज़ हैं.

अप्पू एस्थोस सुरेश

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पाकिस्तान खेतिहर ज़मीन अरब देशों को बेचेगा

नईमा परवेज़

पाकिस्तान भर के किसान और मज़दूर मई दिवस मनाने के लिए बीती पहली मई को भारी संख्या में इकट्ठा हुए. हज़ारों की संख्या में किसानों, मज़दूरों और ट्रेड यूनियन कार्यकर्ताओं ने सिंध के लरकाना, शहदादकोट, जकोबाबाद और कंधकोट ज़िलों में सभाएं कीं और मई दिवस के शहीदों को याद किया. इन कार्यक्रमों में 20 से अधिक ट्रेड और लेबर यूनियन के कार्यकर्ता शामिल थे और उन्होंने खुल कर पाकिस्तान सरकार की किसान विरोधी नीतियों की निंदा की.

जहां एक तरफ ये किसान और मज़दूर अपने भविष्य को लेकर चिंतित थे, वहीं पाकिस्तान सरकार की एक नई पॉलिसी ने उन्हें अपनी समस्याओं पर और गंभीरता से सोचने पर मजबूर कर दिया है. पाकिस्तानी अख़बारों के अनुसार सरकार दस लाख एकड़ खेतिहर ज़मीन अरब देशों को बेचने या किराए पर देने के लिए तैयार है. पाकिस्तान के पूंजी निवेश मंत्री ने गत 19 अप्रैल को एक बयान में कहा कि पाकिस्तानी सरकार सऊदी अरब, यूएई, बहरीन और दूसरे अरब व खाड़ी के देशों से इस संबंध में विचार-विमर्श कर रही है और जल्दी ही इस बारे में समझौतों पर दस्तख़त हो जाएंगे.

इस पूरे मामले को जानने के लिए इसकी पृष्ठभूमि को समझना ज़रूरी है. पिछले कुछ सालों में अंतरराष्ट्रीय सतह पर अनाज के दामों में भारी बढ़ोतरी हुई है. गेहूं, चावल, बाजरा, जौ और सोयाबीन की कीमतों में आने वाली तेज़ी ने बहुत से देशों ख़ास तौर से पेट्रो-डॉलर वाले अरब और खाड़ी के देशों को इस बात पर मजबूर कर दिया है कि वे अपनी फसलें आप उगाहें, ताकि न सिर्फ घरेलू उपभोक्ताओं को खान-पान की परेशानी न हो बल्कि बुरे वक्त के लिए स्टॉक भी किया जा सके. आम भाषा में इसे फूड सिक्योरिटी कहा जाता है. इसी नज़रिए के तहत सऊदी अरब, यूएई और खाड़ी के अन्य देशों की नज़र पाकिस्तान की खेतिहर ज़मीन पर है, ताकि वहां ज़मीन खरीद कर या किराए पर लेकर कॉरपोरेट फार्मिंग की जा सके. ज़ाहिर सी बात है कि इन देशों ने यह उपाय करने से पहले पाकिस्तान की राजनीतिक अस्थिरता, सुरक्षा और कानून की बिगड़ती सूरत-ए-हाल को सामने रख कर ही कोई निर्णय लिया होगा. एक ऐसे समय में, जब इन्हीं सवालों से परेशान हो कर पश्चिमी देशों के पूंजी निवेशक पाकिस्तान से भाग रहे हैं, अरब व खाड़ी के देशों ने बिना किसी हिचकिचाहट के यहां कॉरपोरेट फार्मिंग के नाम पर पैसा लगाने का मन बना लिया है. पाकिस्तान सरकार *भागते भूत की लंगोटी सही* के मुहावरे पर अमल करते हुए अपनी खेतिहर ज़मीन इन देशों को देने के लिए तैयार है. इस पूरे मामले पर देश की दोनों बड़ी पार्टियां, पाकिस्तान पीपुल्स पार्टी और मुस्लिम लीग (नवाज़), पूरी तरह सहमत हैं.

कुछ निजी कंपनियों ने यूएई सरकार के प्रतिनिधि के तौर पर पाकिस्तान में आठ लाख एकड़ ज़मीन पहले ही खरीद रखी है. इन कंपनियों ने बलूचिस्तान में 1.5 हेक्टेयर ज़मीन मिरानी डैम के पास मैकेनाइज़्ड फार्मिंग के नाम पर खरीदी है और जल्दी ही बलूचिस्तान सरकार के साथ एक करार पर दस्तख़त होने की उम्मीद है. शिकारपुर, लरकाना और सुक्खड़ की ज़मीन के बारे में यूएई की कुछ निजी कंपनियां सिंध सरकार के साथ बातचीत कर रही है. इन कंपनियों ने सूबा सरहद और पंजाब की ज़मीन पर पूंजी निवेश करने में रुचि प्रकट की है. पंजाब में इनको पसंद आनेवाली ज़मीन मियांवाली, सरगोधा, खुशब, झांगौर और फैसलाबाद ज़िलों में स्थित हैं.

न सिर्फ यह कि पाकिस्तान सरकार इन ज़मीन को अरब और खाड़ी के देशों को बेचने पर राज़ी है बल्कि इस संबंध में बहुत लुभावनी कानूनी और टैक्स संबंधी सहूलियतें देने की बात भी कर रही है. कानूनी सहूलियतें मुहैया करने के लिए वह एक कानूनी कवच भी बनाने को तैयार है, जिसके अनुसार इन निवेशकों पर पाकिस्तान में सरकार के बदलने का कोई असर नहीं पड़ेगा. इसके अलावा, पाकिस्तान सरकार एक लाख लोगों पर आधारित एक नया सुरक्षा बल भी बनाने पर राज़ी हो गई, जिनको चारों प्रांतों में बांट कर अरब देशों के पूंजी निवेशकों को पूरी सुरक्षा दी जाएगी. इस बल के ट्रेनिंग पर सरकार दो बिलियन अमेरिकी डॉलर खर्च करने के लिए तैयार है. इस पूरे मामले को लेकर पाकिस्तानी किसान और मज़दूर बेहद बेचैन हैं. इस पूरी नीति में कहीं न कहीं पाकिस्तान सरकार की नीयत साफ नहीं है और यही वजह है कि इस पूरे मामले पर बड़ी खामोशी से काम हो रहा है. नीयत साफ न होने की बात इसलिए, क्योंकि प्राइवेट कंपनियों या विदेशी सरकारों को ज़मीन देने के मामले में मज़दूरों के लिए बने कानूनों का कोई जिक्र नहीं है और न उनके हितों की सुरक्षा को लेकर कोई बात कही गई है. एक बेहद महत्वपूर्ण पहलू यह है कि पाकिस्तानी ज़मीन पर खेती करने के लिए ली जाने वाली मशीनों या उपकरणों पर किसी तरह की कस्टम ड्यूटी या सेल्स टैक्स लागू नहीं होगा. इन कॉरपोरेट फार्मों से होने वाली पैदावार पर भी किसी तरह का टैक्स लागू नहीं होगा. ज़मीन को खरीदने या किराए पर लेने के लिए भी कोई अपर सीलिंग नहीं रखी गई है और सौ प्रतिशत फायदा उठाने का प्रावधान भी रखा गया है.

दूसरा महत्वपूर्ण पहलू है अरब और खाड़ी के देशों में पानी की बढ़ती हुई कमी, जिसकी वजह से इन देशों में ऐसी फसलें, जो ज़्यादा पानी खींचती हैं, बंद की जा रही हैं. पाकिस्तान के मैदानी इलाकों में पानी की कमी नहीं है, यह भी दूसरे देशों में खेती करने की एक वजह हो सकती है. अपने तौर पर पाकिस्तान सरकार ज़मीन की इस सौदेबाजी में चार सौ-पांच सौ मिलियन डॉलर के पूंजी निवेश की उम्मीद कर रही है. पाकिस्तान की 16 करोड़ की आबादी का 44 प्रतिशत खेती से जुड़ा हुआ है. इसका मतलब यह है कि देश की कुल घरेलू पैदावार का लगभग 21 प्रतिशत खेती से हासिल होता है. साल 2006 से इसमें 4.6 प्रतिशत की वृद्धि होती रही है जो चीन, भारत और मलेशिया से भी अधिक है. इस पूरे खेल में फायदा बड़े ज़मीदारों को होगा, जबकि छोटे और बेज़मीन किसान इससे बुरी तरह प्रभावित होंगे.

एक तरह से पाकिस्तान सरकार की यह नीति देश को दोबारा कॉलोनी बनाने की तरफ एक कदम है. अंग्रेज़ों के राज़ में भी उपमहाद्वीप में सस्ती मज़दूरी देकर अनाज की बड़ी पैदावार बाहर चली जाती थी. ऐसा लगता है कि पाकिस्तान दूसरा ब्राज़ील बनता जा रहा है, जहां कॉरपोरेट फार्मिंग के नाम पर किसानों का शोषण किया जाता है. इस तरह की कॉरपोरेट फार्मिंग से छोटे किसानों को जो नुकसान होगा उसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल नहीं है. ऐसा लगता है कि धार्मिक आतंकवाद के बाद अब पाकिस्तान एक दूसरी तरह के आतंकवाद का केंद्र बनने जा रहा है. अब देखना यह है कि किसान और मज़दूर कहां तक इसको रोक पाने में सक्षम हो पाते हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

स्वात के सिखों पर भारत में राजनीति

मैं गुरुद्धारा पंजा साहिब में बैठा हूं. मैं वाहेगुरु की कसम खाकर कहता हूं कि स्वात और बुनेर में हम सिखों के साथ किसी जज़िए की बात नहीं हुई. हम सिख यहां ढाई सौ साल से रह रहे हैं. आज तक हमसे कोई ज़बरदस्ती नहीं हुई. किसी को भी धर्म बदलने के लिए आज तक किसी ने ज़ोर नहीं डाला. इस बारे में जो भी ख़बरें आ रही हैं, वे सरासर ग़लत हैं.

-सरदार स्वर्ण सिंह, स्वात घाटी के निवासी

भारत में रहने वाले सिख इन दिनों भड़के हुए हैं. वे पाकिस्तान की स्वात घाटी और बुनेर में रहने वाले सिखों पर हो रहे तालिबानी ज़ुल्म से बेहद ख़फ़ा हैं. इसके ख़िलाफ़ भारत के सिख रोजाना धरना-प्रदर्शन कर रहे हैं. पाकिस्तान की सरकार को लानतें भेज रहे हैं. नारेबाज़ी हो रही है और भारत सरकार पर इस बात का दबाव बनाया जा रहा है कि वह पाकिस्तान को इस बाबत चेतावनी दे. पर जब हमने उन सिख परिवारों से बात की जो स्वात घाटी में पीढ़ियों से रह रहे हैं, तो हक़ीक़त कुछ और निकली.

सरदार स्वर्ण सिंह का खानदान पाकिस्तान की स्वात घाटी में पिछले 250 सालों से रहता आ रहा है. पीढ़ियां दर पीढ़ियां गुज़र गईं. फिलहाल स्वात घाटी में चल रही गोलीबारी से बचने के लिए उन्होंने लगभग दो सौ सिख परिवारों के साथ गुरुद्वारा पंजा साहिब में शरण ले रखी है. कहते हैं कि आज तक उनके परिवार को किसी भी परेशानी का इल्म तक नहीं हुआ. वह वाहेगुरु की कसम खाकर कहते हैं कि स्वात और बुनेर में हम सिखों के साथ जज़िया वसूलने की कोई बात नहीं हुई. हम सिख यहां ढाई सौ साल से रह रहे हैं. आज तक हमसे कोई ज़बरदस्ती नहीं हुई. धर्म बदलने के लिए आज तक किसी ने ज़ोर नहीं डाला. न ही किसी ने ज़बरदस्ती हमें अपने घरों से निकाला है. इस बारे में जो भी ख़बरें आ रही हैं, वे सरासर ग़लत हैं. दरअसल पाकिस्तान के कई इलाकों में तालिबान और सेना के बीच जारी संघर्ष से बड़ी संख्या में लोगों को विस्थापित होना पड़ा है. इन विस्थापितों में सिर्फ सिख परिवार ही नहीं हैं, बल्कि क़बायली मुसलमान भी हैं. अधिकतर सिखों ने सूबा सरहद की राजधानी पेशावर में शरण लिया है. जल्दबाज़ी में अपना घर छोड़कर गए लोग बिल्कुल तितर-बितर हो चुके हैं. पाकिस्तान सरकार स्वात से विस्थापित हुए करीब पांच लाख लोगों की ज़रूरतों से निपटने की जुगत में लगी हुई है. उधर पाकिस्तानी सेना के हवाले से यह ख़बर भी आ रही है कि तालिबानी इलाका छोड़ कर जा रहे लोगों को रोकने की कोशिश कर रहे हैं. बहरहाल, स्वात में लंबे समय से तनाव बना हुआ है. मुख्य लड़ाई स्वात के मिंगोरा, कबाल और चारबाग़ इलाकों में है.

दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के प्रेसीडेंट परमजीत सिंह सरना भी सरदार स्वर्ण सिंह की बातों से पूरी सहमति जताते हैं. सरना भारत में उपजे सारे बवाल का ठीकरा भारतीय जनता पार्टी पर फोड़ते हैं. कहते हैं कि यह धरना-प्रदर्शन मनमोहन सिंह की सरकार को बदनाम करने के लिए किया जा रहा है, ताकि सिखों में सरकार को लेकर ग़लत संदेश जाए. साथ ही हिंदुस्तान और पाकिस्तान के बीच के रिश्ते ख़राब हो जाएं और इसका ठीकरा भी यूपीए सरकार के सिर पर फूटे. सरना बताते हैं कि जब से स्वात से सरदारों का पलायन शुरू हुआ है, तभी से वे उनके संपर्क में हैं. उनकी ख़ैर-ख़बर ले रहे हैं.

उन्हें कभी इस बात की शिकायत नहीं मिली कि घाटी में सिखों पर अत्याचार हो रहा है. सरदार स्वर्ण सिंह और उनके साथ के लोग भी हिंदुस्तान में इस मसले पर हो रहे विरोध प्रदर्शन से नाराज़ हैं. वह कहते हैं कि हिंदुस्तान के सिखों से हमारी गुजारिश है कि हमारे लिए मसले-मसाइल पैदा न करें. वे हमारी ख़ातिर जलसे-जुलूस न निकालें. भारत में वे ऐसी हरक़तें कर यहां पाकिस्तान में हम दो क़ौमों के बीच नफरत पैदा न करें.

अगर उन्हें ये सब करना ही है तो 1984 के दंगों के ख़िलाफ़ जुलूस निकालें. भारतीय सिखों को अगर कुछ करना ही है तो वे हमें इमदाद करें, हमारी मदद करें. सहानुभूति के नाम पर बेवजह हमारे लिए मुसीबतें पैदा न करें. वे कुछ करना ही चाहते हैं तो हमारे लिए बिस्तर, कंबल, दवाएं, खाने का सामान वगैरह भिजवाएं न कि बगैर किसी कारण के शोर-शराबा करें. स्वर्ण सिंह कहते हैं कि जब गुजरात में दंगे हुए थे तब तो पाकिस्तान के मुसलमानों ने प्रदर्शन नहीं किया था. तो अब हिंदुस्तान के सिख ऐसा क्यों कर रहे हैं?

सरदार स्वर्ण सिंह उन लोगों को लेकर हिंदुस्तान में चल रही तमाम अटकलों को ख़ारिज़ कर देते हैं. वह इन सारी बातों से बिल्कुल इत्तफाक नहीं रखते. वह स्वात में सरदारों के घर जला देने वाली ख़बरों को बेबुनियाद बताते हैं.

उनका कहना है कि यहां तो मुसलमान भी दुश्वारियों में हैं. यहां गृहयुद्ध के हालात हैं. जो परेशानी हमारे साथ है वही दिक़्क़तें यहां के अक़लियतों की भी हैं. घाटी में पाकिस्तानी सेना और तालिबानियों के बीच जिस हौलनाक तरीके से जंग छिड़ी हुई है, उससे घबरा कर ही हम लोगों ने अपना घर छोड़ने का फैसला किया. हमारे सिर पर हेलीकॉप्टर मंडरा रहे थे. घर के पास बम और गोले फट रहे थे. तब लगा कि वहां से निकलने में ही भलाई है. हसन अब्दाल स्थित गुरुद्वारा पंजा साहिब हमारा सबसे पवित्र तीर्थस्थल है. लिहाज़ा हम लोगों ने यहीं पनाह लेना मुनासिब समझा.

वैसे पाकिस्तान ही नहीं बल्कि अफगानिस्तान के कांधार, जलालाबाद और काबुल जैसे शहरों में रहने वाले हज़ारों सिख परिवारों को भी इस समय जानलेवा मुश्किलों से वाबस्ता होना पड़ रहा है. ये सभी इन जगहों पर छोटा-मोटा कारोबार करके ज़िंदगी बसर करते हैं. वैसे, इन संदर्भों में यह कहना ज़्यादा मुनासिब होगा कि वहां वे सभी लोग बुरे दौर से गुज़र रहे हैं, जो अफगानी नहीं हैं.

सरदार स्वर्ण सिंह कहते हैं कि अगर आप हमारे लिए कुछ कर सकते हैं तो बस ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि हालात जल्द से जल्द काबू में आएं और हम वापस अपने घर लौट सकें. हमारी तो वाहेगुरु से यही अरदास है कि दोनों मुल्कों के बीच अमन-चैन क़ायम हो. प्यार-मोहब्बत का सिलसिला जारी हो. तभी दोनों मुल्कों की तरक्की होगी. इस तरह ज़िंदाबाद और मुर्दाबाद करने से किसी को भी कुछ हासिल नहीं होने वाला है.

इस बीच, दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी ने पाकिस्तानी कैंपों और गुरुद्वारों में शरण लिए सिखों और मुसलमान भाइयों के लिए मदद के तौर पर बिस्तरें, कंबल, कपड़े, दवाएं और ड्राई-फ्रूट्स की खेप भिजवाई है. दिल्ली सिख गुरुद्वारा प्रबंधक कमिटी के प्रेसीडेंट परमजीत सिंह सरना कहते हैं कि जब पाकिस्तान में ज़लज़ला आया था तब भी एक करोड़ रुपये के सामान की मदद भेजी गई थी. आगे भी मदद का यह सिलसिला जारी रहेगा. परमजीत सिंह सरना कहते हैं कि इतने संगीन मसले पर राजनीति करना बेहद ओछी और घटिया हरकत है.

मासूम और निर्दोष लोगों की जान की क़ीमत पर सियासत कैसे की जा सकती है? अगर वाकई कुछ करने की ज़रूरत है तो वह यह कि इस मसले का हल हिंदुस्तान, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और अमेरिका की सरकारें मिल बैठ कर खोजें. कड़े कदम उठाएं. दहशतग़र्दों को कुचलने के लिए बेहद कड़ाई से काम लें. अंतरराष्ट्रीय सहयोग लेकर जड़ से इस परेशानी को ख़त्म किया जाए. तभी स्वात में अमन और सुकून वापस आ पाएगा और पलायन किए हुए लोग भी अपने आशियाने में लौट पाएंगे. इससे भारत और पाकिस्तान की सरहदों पर न सिर्फ चैन क़ायम हो जाएगा, बल्कि दोनों मुल्कों की तरक्की भी होगी.

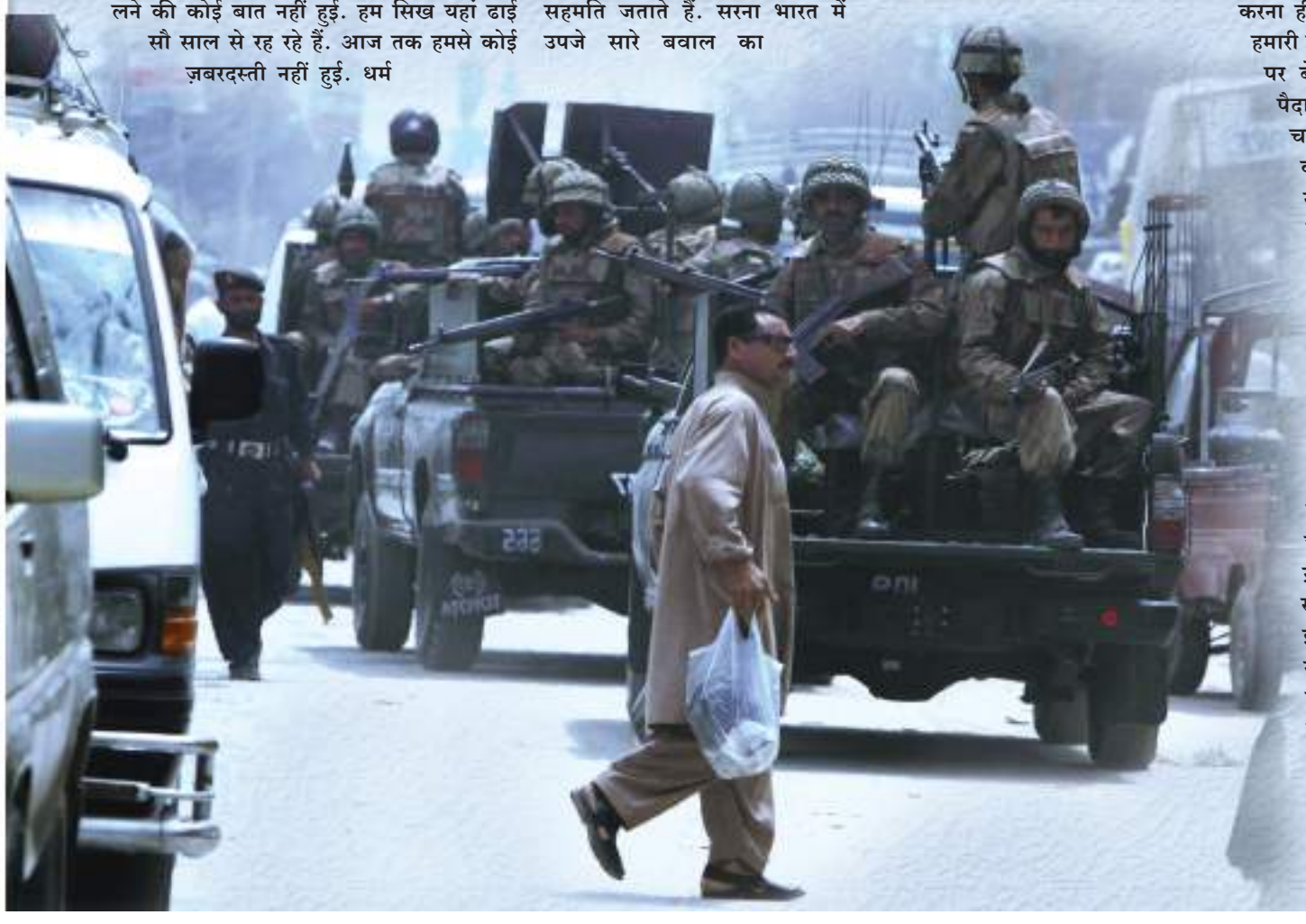

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

लड़कियों से नफ़रत करता है तालिबान

अक़्दस वहीद

तालिबान के निशाने पर पाकिस्तान की महिलाएं हैं. तालिबान हमारे अधिकारों पर हमला कर रहा है, और वह हमें उनसे मरहूम रखने की हर कोशिश में लगा है. हमारे वे बुनियादी अधिकार भी सुरक्षित नहीं हैं जो हमें खुद इस्लाम ने नवाज़े हैं. पाकिस्तान में आज हमारी हालत कुछ इस तरह है कि आप यक़ीन नहीं कर सकते कि दुनिया इक्कीसवीं सदी के भी दस साल काट चुकी है और पाकिस्तान में हम इस्लाम के पहले की दुनिया में जी रहे हैं, जब महिलाओं को एक गुलाम माना जाता था और वह पुरुषों की महज संपत्ति हुआ करती थी. महिलाओं की खुद की इच्छा यहां कोई मायने नहीं रखती और इस बात का अंदाज़ा इसी से लगाया जा सकता है कि हमें निकाह के मसौदे में कोई पक्ष भी नहीं माना जाता. ज़्यादातर मुलसमानों को लड़की की पैदाइश एक बोझ लगती है, शर्म से उसका सिर समाज के सामने झुक जाता है.

यहां तक कि कुरान में दर्ज है कि–

जब भी किसी को बेटी पैदा होने की ख़बर मिलती, उसका चेहरा दुख से काला पड़ जाता, वह समाज से छिपने लगता है, क्योंकि बेटी को जन्म देना एक गुनाह है. उस शख्स के सामने सवाल खड़ा हो जाता है कि वह इस गुनाह के साथ समाज में मुंह छिपा कर रहे या फिर अपनी संतान को ज़मीन में दफ़न कर दे. ज़ाहिर है, फैसला शैतानी होगा.

ऐसा ही कुछ हाल तालिबान का है. वे इस्लाम के पूर्व की दुनिया के जाहिल हैं. उन्हें लड़की जात से ही नफ़रत है. अंतर महज़ इतना है कि वे उसे जिंदा दफ़न करने के बजाय उसकी ज़िंदगी को ही नर्क से बदतर बना देते हैं. इन जाहिलों को यह भी नहीं पता कि इस्लाम ने महिलाओं को पुरुषों की बराबरी के अधिकार से नवाज़ा है और समाज में उन्हें भी वह इज़्ज़त बख्शी है जो पुरुष खुद के लिए मानते हैं.

मुसलमान महिलाओं को अधिकार अल्लाह ने दिया जो नेक है, रहमदिल है, जो इंसाफ परस्त है और जो सब कुछ जानता है. ये अधिकार उसे हज़ारों साल पहले उसी वक्त दे दिए गए थे जब उसे बनाया गया.

कुरान शरीफ में अल्लाह कहते हैं–

अरे यक़ीन करने वालो, किसी महिला को उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ जाकर अपनाने पर पाबंदी है, और तुम्हें उनके साथ बुरा बर्ताव नहीं करना चाहिए.

इससे ज़ाहिर है कि खुदा ने महिलाओं के साथ नरम दिली की बात कही है और इस्लाम के ये जाहिल समर्थक हम पर कोड़े बरसा रहे हैं. क्या यही उनके लिए खुदा के फरमान की तामील है?

इस्लाम के हिमायती बने तालिबानी आज अपने ख़ास मक़सद से शरीअत को लागू कर रहे हैं और जो भी उनके इस शरीअत के ख़िलाफ़ जा रहे है उन्हें सज़ा दी जा रही है. इस तालिबानी शरीअत ने फरमान जारी कर महिलाओं को बाज़ार जाकर ख़रीददारी करने पर रोक लगा दी है. हालात ऐसे हैं कि महिलाएं आज उन दुकानों का रुख़ भी नहीं कर सकतीं जो ख़ास महिलाओं की ख़रीददारी के लिए बने हैं. तालिबानी फरमान में उन दुकानदारों को भी धमकी दी गई है जो महिला को सामान बेचते पाए जाते हैं. इस फरमान के पोस्टर आज स्वात घाटी में देखे जा सकते हैं. इनमें साफ-साफ लिखा है कि महिलाओं का बाज़ार जाना इस्लाम के ख़िलाफ़ है. मेरा सवाल है कि क्या तमाम मुस्लिम मुल्कों में चल रहे शॉपिंग सेंटर और बाज़ार ग़ैर इस्लामी है. अगर वह ग़ैर इस्लामी हैं तो उनके ख़िलाफ़ कोई कदम क्यों नहीं उठाए जा रहे हैं. क्यों महज़ पाकिस्तानी महिलाओं को हाशिए पर रखा जा रहा है. इस्लाम में महिलाओं के लिए सबसे अहम अधिकार तालीम का है. तालीम पा लेने के बाद उसे अपने हक़ को मांगने या हक़ के लिए लड़ने की ज़रूरत नहीं है. क्योंकि यह हक़ उसे खुद अल्लाह ने दिया है. और इन जाहिलों को इसी बात का डर है कि अगर महिलाओं को खुदा के नवाज़े इस हक का एहसास हो जाएगा तो वह समाज के इस आधे तबके पर अपना असर गंवा बैठेंगे. इसी वजह से तालिबान, महिलाओं को हर कदम पर तालीम लेने से रोक रहा है. लड़कियों के स्कूलों को तोड़ा जा रहा है. वे हमारे स्कूलों में घुसते हैं और हमारे चेहरे पर तेज़ाब फेंकने की धमकी देते हैं.

मैं खुद लाहौर के कैनार्ड कॉलेज में पढ़ती हूं. यह कॉलेज, महिलाओं का एक प्रतिष्ठित कॉलेज है और इस बात पर यकीन रखता है कि महिलाएं पुरुषों के साथ हर पेशे में कदम मिलाकर चल सकती है. मेरा कॉलेज महिलाओं की आज़ादी में विश्वास रखता है और हमें ज़िंदगी के हर क्षेत्र में बेहतर करने के लिए तैयार करता है. तालिबान हमारे कॉलेज को भी नहीं छोड़ रहा है. कॉलेज प्रशासन पर दबाव डाला जा रहा है कि लड़कियों पर तालिबानी ड्रेस कोड लागू किया जाए नहीं वे सख्त कार्रवाई करेंगे.

तालिबानी, कॉलेज की लड़कियों को शरीफ रहने की हिदायत दे रहे हैं, जिसके लिए वे जींस या शरीर पर कसे हुए कपड़ों को पहनने पर पाबंदी लगा रहे है. यह तो केवल मेरे कॉलेज की बात है. पाकिस्तान के हर शहर में जिस तरह से लड़कियों को शिकार बनाया जा रहा है, उससे आज उनके साथ-साथ उनके परिवार भी खौफ में जी रहे हैं. आज ज्यादातर परिवारों ने अपनी लड़कियों को स्कूल भेजना बंद कर दिया है.

आज पाकिस्तान में तालिबानी शरीअत लागू करने की कोशिशों से सभी परेशान है. इसके विरोध में महिलाएं पीछे नहीं हैं. वह भी अपने घरों से बाहर निकल कर बेखौफ होकर तालिबानी ताकतों का विरोध कर रही है. पिछले हफ्ते ही विमेंस एक्शन फोरम की कराची शाखा ने सभ्य समाज से लोगों को बुलाया और तालिबान को मुंह तोड़ जवाब देने के लिए साझा रणनीति बनाने की बात कही. फोरम की इस बैठक में कई कलाकारों, फिल्मी हस्तियों और प्रोफेशनल महिलाओं ने शिरकत की. इस बैठक में माहौल उस वक्त गमगीन हो गया जब महिला अधिकारों के लिए लड़ रही एक एक्टिविस्ट ने कहा कि हम वापस जिया उल हक़ के दौर में आ गए है.

फर्क महज़ इतना है कि उस वक्त हम स्टेट से लड़ रहे थे. आज हम महिलाओं के लिए नफरत से लड़ रहे हैं जिसे वे लोग फैला रहे हैं जो आज इतने ताक़तवर हो गए हैं कि स्टेट भी उनका कुछ नहीं कर पा रहा है. शायद इसलिए कि वे लोग बिना किसी नियम क़ानून के खेलते हैं. विमेंस एक्शन फोरम, कराची की इस बैठक में निज़ाम-ए-अदल समझौतों के बाद के हालात से निपटने के लिए नए प्रस्ताव रखे गए. ये महिला संगठन मांग कर रहे हैं कि समूचे पाकिस्तान के लिए एक संविधान और एक क़ानून बनाया जाए. पाकिस्तान सरकार के फरमान के ऊपर किसी को तरज़ीह न दी जाए. आतंकियों के हथियारों को तत्काल छीन लिया जाए. और वे सभी घोषणाएं जो किसी एक तबके के पाकिस्तानियों के लिए की गई हैं, उन्हें खारिज़ किया जाए.

यहां तालिबान के इर्द-गिर्द घूम रहे एक भ्रम को साफ करना ज़रूरी है. तालिबान किसी बाहरी ख़तरे का स्वरूप नहीं है, न ही उसे रूस या भारत से फंडिंग की जा रही है. 1990 के दशक में अफगानिस्तान में तालिबानी नॉदर्न एलायंस से लड़ रहे थे. उसी दौर में पाकिस्तान के कबाइली इलाकों से हज़ारों की संख्या में पश्तून के पैदल लड़ाके तालिबान की तरफ से लड़ने अफगानिस्तान पहुंचे थे. 2001 में अफगानी तालिबानी पाकिस्तान भाग आए. उस वक्त पाकिस्तानी तालिबान कमज़ोर था. उन्होंने अफगान से आ रहे तालिबानियों की ख़िदमत की और उसके बदले उनसे काफी पैसे कमाए.

2001 से 2004 तक पाकिस्तानी तालिबानियों की संख्या कई गुना हो गई और अफगानी तालिबानियों की संगत में वे ज़्यादा कट्टर हो गए. इसी दौर में उन्होंने तालिबान के लिए एक अलग राज्य की संकल्पना की और वही संकल्पना आज उन्हें हक़ीक़त होती दिख रही है.

आज तालिबान के सभी प्रमुख लीडर पाकिस्तान में हैं और वह पाकिस्तान सरकार को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते है. पाकिस्तान में आज ये लड़ाके और भी संगठनों के साथ हाथ मिला रहे हैं. आज तालिबानियों की मुहिम में कश्मीर से लश्कर-ए-तैयबा और हरकत-उल-मुजाहिदीन भी जुड़ चुके हैं. यहां तक कि उनके साथ कुछ पंजाबी लड़ाके भी शामिल हो चुके हैं. मेरी समझ से, अब वक्त आ चुका है जब इन संगठनों को जो पाकिस्तान के लिए ख़तरा बन चुके हैं, जड़ सहित उखाड़ फेंकना चाहिए. इनके ख़िलाफ़ कड़ी सैनिक कारवाई होनी चाहिए और इनका नामोनिशान इस पाक ज़मीन से हमेशा-हमेशा के लिए मिटा देना चाहिए. आज मुश्किल की इस घड़ी में पाकिस्तानियों को एकजुट होकर इन ताक़तों का विरोध करना चाहिए, ताकि इस्लाम पर मंडरा रहे ख़तरे को टाला जा सके.

पाकिस्तान से

feedback.chauthiduniya@gmail.com

यह जंग ज़रूरी है

मैं प्रधानमंत्री गिलानी के फैसले का स्वागत करती हूं जिन्होंने इन ताक़तों के ख़िलाफ़ जंग का एलान कर दिया है. एक अहम फैसले में पाकिस्तान सरकार ने स्वात और मलाकंद इलाके से तालिबानियों के सफाए के लिए सेना को हरी झंडी दे दी है, ताकि वहां पाकिस्तान सरकार की हुकूमत को दोबारा कायम किया जा सके. इसके साथ ही प्रधानमंत्री ने एक बिलियन रुपए की मदद का भी एलान किया है, जिसके जरिए उन परिवारों की मदद की जानी है जो अपने परिवार को आतंकियों के साथ जारी इस लड़ाई में खो रहे हैं. तालिबानियों के ख़िलाफ़ मुहिम शुरू करने के पहले प्रधानमंत्री ने सभी प्रमुख राजनीतिक दलों से और उन संस्थाओं से भी बात की और अंत में इस फैसले पर पहुंचे कि आतंकियों से कड़ाई के साथ ही निपटना ज़रूरी है. उन्होंने कहा कि निज़ाम-ए-अदल समझौते को स्वात में शांति के लिए किया गया था, लेकिन उसके बाद भी तालिबानियों के रुख़ में कोई परिवर्तन न आने से सरकार को मजबूरन उनके ख़िलाफ़ सैनिक कार्रवाई का फैसला लेना पडा. गिलानी ने कहा, हमने बातचीत का रास्ता चुना, निज़ाम-ए-अदल समझौता किया, इस उम्मीद से कि आतंकवादी हथियार डाल देंगे. हमें इस फैसले के लिए दुनिया भर से आलोचना का सामना भी करना पड़ा. लेकिन शांति के इस मौके को तालिबान ने गंवा दिया. आज हमें यह फैसला लेना पड़ा और अब हम उनका सफाया करके रहेंगे, जिन्होंने पाकिस्तान को तबाह करने की योजना बना रखी है.

गिलानी ने देशवासियों से भी अपील की है कि वे सरकार के इस फैसले में उनका साथ दें, ताकि वतन का विरोध करने वालों का सफाया किया जा सके. सरकार के इस फैसले पर अमल करने में कई दिक्कतों का सामना करना पड़ेगा. पाकिस्तान की यह लड़ाई महज़ चंद दहशतगर्दों के ख़िलाफ़ नहीं है जो संगीनों के साए में आतंक और खौफ़ का माहौल बना रहे हैं. बल्कि उसकी यलगार उस सोच के ख़िलाफ़ है जो इन दहशतगर्दों को यह विश्वास दिला रही है कि वह मुट्ठी भर लोग समूचे देशवासियों के अधिकारों के साथ खिलवाड़ कर सकेंगे.

पाकिस्तान के इस युद्ध में विश्व समुदाय की भी अहम भूमिका रहेगी. क्योंकि सैनिक कार्यवाई का असर आतंकवादियों के साथ-साथ लाखों निर्दोष लोगों पर भी पड़ेगा जो युद्ध की इस स्थिति में अपने घर-बार को छोड़ने पर मजबूर होंगे. कई बेगुनाह इस युद्ध में मारे जाएंगे.

अक़्दस वहीद

बचपन पर हमला

अनंत विजय

कुछ दिनों पहले की बात है. हमारे एक वरिष्ठ सहयोगी ने बताया कि एक दिन वह अपनी छह-सात साल की बिटिया के साथ आईपीएल मैच देख रहे थे. अचानक ब्रेक में गर्भ निरोधक गोली यानी आई-पिल का विज्ञापन आया. बिटिया ने मासूमियत से ऐसे-ऐसे सवाल पूछे कि पिता को जबाव देते नहीं बन रहा था. बिटिया उस विज्ञापन में कहे गए शब्दों की जानकारी लेने पर उतारू थी और पिता के सामने गंभीर संकट था. किसी तरह से मामला निबटा, लेकिन बच्चों की जिज्ञासा को आप बहला-फुसला कर टाल नहीं सकते, क्योंकि वे फौरन इस बात को भांप लेते हैं कि उनको टरकाया जा रहा है. इसी तरह का एक और वाकया हमारी एक महिला सहयोगी ने बताया. यह वाकया बेहद अजीब-सा था. हुआ यूं कि एक दिन वह पूरे परिवार के साथ टीवी देख रही थी कि अचानक उसका साढ़े पांच का साल का बच्चा चिल्लाया-देखो मम्मियों का डायपर आया. दरअसल उस वक्त टीवी पर सैनेटरी नैपकिन का विज्ञापन आ रहा था. बच्चा बगैर कुछ सोचे समझे चिल्ला रहा था, और ड्राइंग रूम में एक साथ बैठ कर टीवी देख रहा पूरा परिवार सन्न. यह तो उस वक्त हुआ जब बच्चे परिवार के साथ या फिर अपने मां-बाप के साथ टीवी देख रहे थे, और उनके मन में विज्ञापनों को देखकर जो भी सवाल उठते हैं उसे वे जानने की कोशिश कर रहे थे. उस वक्त की कल्पना करिए जब बच्चे घर में अकेले टीवी देखते हैं और ऐसे विज्ञापनों को देखकर उनके मन में जो सवाल उठते हैं. उस वक्त इसका जबाव देने वाला कोई नहीं होता है और बाल मन पर इसका क्या असर पड़ता होगा, इसकी सिर्फ कल्पना ही की जा सकती है.

इस बात को ज़्यादा अरसा नहीं बीता है. मैं अपने परिवार के साथ दिल्ली के पास के एक मॉल में घूम रहा था. अपनी बिटिया के लिए कपड़ों की तलाश में भटकते हुए बच्चों के कपड़ों के सेक्शन में चला गया. मेरी बेटी को स्कर्ट और लहंगा बेहद पसंद है, इसलिए हमलोग उसकी तलाश में जुट गए. हम जहां कपड़े देख रहे थे, वहीं पर कुछ और युवा मांएं भी अपनी छोटी-छोटी बेटियों के साथ खरीदारी कर रही थीं. सब

लोग अपने-अपने बच्चों की पसंद-नापसंद का ध्यान रख रहे थे और बच्चे थे कि बड़ों की तरह कपड़ों को रिजेक्ट किए जा रहे थे. मां-बाप अपने-अपने बच्चों को मनाने में जुटे थे. अचानक तीन-चार साल की एक लड़की ट्रायल रूम से अपनी मम्मी के साथ रोती हुई बाहर आई और अपने पापा की ओर मुख़ातिब होकर कहा कि पापा मुझे यह स्कर्ट पसंद नहीं है. युवा पापा ने अपनी पत्नी से पूछा कि क्या हो गया, यह रो क्यों रही है? मम्मी ने रहस्यमयी मुस्कुराहट के साथ कहा कि अपनी बिटिया से ही पूछ लो. जब उसने अपनी छोटी और प्यारी-सी बिटिया से पुचकार कर पूछा तो उसने सुबकते हुए कहा कि इसमें नेवल (यानी नाभि) नहीं दिखता, इसलिए मुझे यह नहीं लेना है. उसकी बात सुनते ही मेरे समेत वहां मौजूद कई लोग चौंके. लेकिन उस छोटी बच्ची की मां ने कहा-कोई बात नहीं बेटा, दूसरा ट्राई कर लेते हैं. इतनी बड़ी बात उस छोटी लड़की ने कही और उसके मां-बाप ने उसे जिस अंदाज में लिया, वह मेरे लिए न सिर्फ चौंकाने वाला था बल्कि चकित करनेवाला भी. मैं जब वहां से बाहर निकला तो मेरे जेहन में बार-बार उस छोटी बच्ची की प्रतिक्रिया गूंज रही थी. मैं लगातार अपने आप से यह पूछने की कोशिश कर रहा था कि क्या वजह थी जो उस छोटी सी बच्ची ने कहा कि मम्मा नेवल नहीं दिखता. उसके लिए इसके मायने क्या थे, कहां से यह सोच उसके अंदर आई, किससे प्रभावित होकर उसने ये कहा और उसके मां-बाप ने इसे उतनी सहजता से कैसे लिया? ये सवाल मुझे इतने परेशान कर रहे थे कि मैं वापस उस स्टोर में गया तो वे लोग बाहर निकलते हुए मिल गए. मैंने उस बच्ची के पिता को रोका और उनसे पूछा कि उस बच्ची ने नेवल नहीं दिखने जैसी बात क्या सोचकर कही और उसके लिए इसके क्या मायने हैं? उसके पिता ने छूटते ही कहा-अरे भाई साहब, आप किस चक्कर में पड़े हो. यह बिल्कुल नई पीढ़ी है और इनकी सारी सोच टेलीविजन के हिसाब से चलती है. आजकल ये टीवी पर आनेवाले डांस शो के ड्रेसेज देखकर अपनी ड्रेसेज तय कर रही हैं. यह कहकर वह युवा दंपति सहज भाव से आगे बढ़ गया. ये तीन घटनाएं ऐसी हैं, जो हमें यह सोचने पर विवश करती हैं कि टेलीविजन ने हमारे समाज को, हमारे जीवन, हमारे रहन-सहन को इस कदर प्रभावित कर दिया है कि तीन-चार साल की बच्ची भी इससे अछूती नहीं रह सकी है. हमसे और हमारी पीढ़ी के पहले के लोग सिनेमा से जबरदस्त रूप से प्रभावित होते थे. अमिताभ बच्चन से लोग इतने प्रभावित हुए थे कि कई लोगों ने अपने बच्चों का नाम विजय रख दिया था जो आमतौर पर अमिताभ की हर फिल्मों में उनका नाम होता था. अमिताभ के बोलने का अंदाज भी लोगों को खूब भाया और उसकी भी जमकर नकल हुई. ऋषि कपूर की फिल्म *बॉबी* के बाद तो कपड़े के एक खास डिज़ाइन का नाम ही बॉबी प्रिंट हो गया. फिर सलमान की एक फिल्म आई थी-मैंने प्यार किया-जिसमें उसने एक टोपी पहनी थी, जिस पर फ्रेंड लिखा था और बाज़ार में हर दूसरा लड़का उसी तरह की फ्रेंड लिखी टोपी पहने नज़र आने लगा था. फिल्मों से आमतौर पर युवा वर्ग न सिर्फ प्रभावित होता रहा है, बल्कि अच्छी-बुरी चीजें अपनाता भी रहा है. यह तो टेलीविजन का ही कमाल है कि उसने घर-घर में बच्चों को भी अपनी जद में ले लिया. बच्चे न केवल टीवी पर आनेवाले धारावाहिकों से प्रभावित होते हैं, बल्कि विज्ञापन भी उन्हें बेहद पसंद आते हैं और उनकी नकल भी करते हैं. रियलिटी शो की नकल करने में कई बच्चों की जान भी जा चुकी है.

टीवी के मार्फत कब हमारी पूरी की पूरी संस्कृति ख़ामोशी से बदल गई, इसका इल्म न तो भारतीयता के नाम पर अपनी दुकान चलाने वालों को है और न ही स्कूल और कॉलेज में बैठे प्रशासकों को. संस्कृति के नाम पर दुकान चलाने वाले भगवा ब्रिगेड की अज्ञानता पर तरस आता है. अब भी वे प्रागैतिहासिक काल में जी रहे हैं. दुनिया कहां से कहां चली गई और वे धोती-कुर्ते और साड़ी में ही उलझे हुए हैं. समाज में हुई ख़ामोश क्रांति का न तो उन्हें इल्म है, न ही अंदाज. वे तो विश्वविद्यालय के उन आलोचकों की तरह हैं, जो अब भी निराला और मुक्तिबोध में ही उलझे हुए हैं. कुछ तो मीरा और कबीर की रचनाओं में ही नया अर्थ ढूंढ रहे हैं. मुझे तो राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर की संस्कृति के चार अध्याय में लिखी वे पंक्तियां याद आ रही है, जहां दिनकर जी ने लिखा है- *विद्रोह क्रांति या बग़ावत कोई ऐसी चीज नहीं जिसका विस्फोट अचानक होता है....घाव भी फूटने के पहले काफी दिनों तक पकता रहता है.*

हमारी संस्कृति में जो ख़ामोश बदलाव या कहें ख़ामोश क्रांति आई, वह अचानक नहीं आई है. इसके पीछे भी कई सालों तक फिल्मों या टीवी का प्रभाव रहा जो कि अपनी सभ्यता और संस्कृति को छोड़ पश्चिमी सभ्यता के अंधानुकरण में जुटे रहे और आधुनिकता के नाम पर अश्लीलता परोसते रहे. नतीजा यह कि जो उम्र बच्चों के खेलने और मासूमियत भरी शैतानी करने की होती है, उसमें वे पोशाक के बारे में सोच रहे हैं.

feedback.chauthiduniya@gmail.com

कबिरा खड़ा बाज़ार में

➤ नई सरकार नया साझा कार्यक्रम बनाएगी. ***-मनमोहन सिंह***
⊙ और साझे की हांडी चौराहे पर फूटेगी.

➤ कांग्रेस ही मजबूत सरकार दे सकती है. ***-सोनिया गांधी***
⊙ आप फेविकोल के विज्ञापन में क्यों नहीं आतीं.

➤ उत्तर प्रदेश में स्वाइन फ्लू का कोई मरीज़ नहीं ***-एक ख़बर***
⊙ स्वाइन फ्लू क्या यहां आकर खुद पर रासुका लगवाएगा?

➤ बाबरी मस्ज़िद मामले में भाजपा ने मुझे अंधेरे में रखा ***-कल्याण सिंह***
⊙ वह राजनीति में इमां का नूर ढूंढ़ता था,
शजर पे नीम के यानी खजूर ढूंढ़ता था.

➤ नेपाल में नई सरकार के लिए मारा-मारी ***-एक ख़बर***
⊙ 16 मई से यही फिल्म भारत में रिलीज़ हो रही है.

➤ संजय दत्त के विरुद्ध एक और रिपोर्ट दर्ज़. ***-एक ख़बर***
⊙ यानी उनके राजनैतिक करियर में एक और निखार

➤ संयुक्त राष्ट्र संघ ने इज़राइल की आलोचना की ***-एक ख़बर***
⊙ झूठ-मूठ की.

➤ केंद्र में तीसरे मोर्चे की सरकार संभव. ***-बर्धन***
⊙ चंपा का मौसम है, न गुलाबों का मौसम है
देश में अपने अबकी तो ख्वाबों का मौसम है

➤ मुख्तार अंसारी जेल वापस.
⊙ पहुंची वही पे खाक जहां का खमीर था.

➤ बीजेपी और बीएसपी में गुप्त समझौता. ***-अमर सिंह***
⊙ अरे आप सी.बी.आई. में नौकरी क्यों नहीं करते?

➤ कांग्रेस सराकर न बनने पर आसमान नहीं गिर जाएगा. ***-दिग्विजय सिंह***
⊙ ज़मीन तो खिसक जाएगी दिग्गी राजा.

➤ पांचवें चरण से पहले कुछ नहीं बोलेंगे. ***-भाजपा***
⊙ ऐसा लगता है जैसे आप बाद में भी नहीं बोलेंगे.

➤ कांग्रेस ने सौतेला व्यवहार किया है. ***-मायावती***
⊙ सौतेली मां से उम्मीद क्या की जा सकती है.

➤ समर्थन उसी को जो मायावती को बर्खास्त करे. ***-मुलायम***
⊙ मंडी जाने लायक पहले जेब में
दाम तो आए.

उस्मान मीनाई

feedback.chauthiduniya@gmail.com

पिछले अंक में आपने पढ़ा कि सूफ़ी के पिता की मौत के बाद वह किस तरह शराब की तस्करी में लग गया. उधर, लेखक की ज़िंदगी में भी कई बदलाव आए. आगे की कहानी इस अंक में...

मुसलमान

आबिद सुरती

ये शब्द उनसे सहन नहीं होते. वे चीख़-चीख़कर पूरा घर सिर पर उठा लेते.

पर इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे पिता हमसे प्यार नहीं करते थे. सच बात यह है कि वे खुद चाहते थे कि हम दोनों भाइयों को गोद में बैठाकर प्यार-दुलार करें, हमारी भोली-भाली बेतरतीब बातें सुनें और हमें परियों की कहानियां सुनाएं, लेकिन उनकी मानसिक उलझनें उन्हें ऐसा करने से रोकती थीं.

अपनी चारपाई के चारों ओर उन्होंने एक काल्पनिक घेरा खड़ा कर दिया था. उन्हें वहम था कि हम बच्चे उस घेरे में प्रवेश करेंगे तो उनके अपने शरीर में वास करती प्रेतात्माएं हमारे कोमल शरीर में भी दाख़िल हो जाएंगी.

यह सब समझने की तब मेरी उमर नहीं थी. इसके कारण पिता के प्रति मेरे मन में कोई ममता नहीं पैदा हो सकी, बल्कि मन के किसी अनजाने कोने में नफ़रत का भाव उत्पन्न हो गया था. फिर भी उनकी मौत के बाद मेरे मन में यह परिवर्तन कैसे आया? जिन बच्चों से मुझे दूर रहना चाहिए था, वही मेरे मित्र कैसे बन गए?

घर से किताबें लेकर मैं स्कूल के लिए निकलता, पर चला जाता नए दोस्तों के साथ भटकने. कभी उपनगरीय लोकल गाड़ियों में बैठकर हम पूरे दिन घूमते रहते, तो कभी डॉक में चले जाते. दूसरे विश्व-युद्ध से लौटे सैनिकों से भरी गाड़ियों के साथ हम भिखारियों की तरह दौड़ते. (ये गाड़ियां डॉक से जुड़ी हुई थीं और उनकी रफ़्तार भी धीमी रहती थी.)

गोरे सैनिक गाड़ी की खिड़कियों में से चॉकलेट का टुकड़ा, एकाध विदेशी सिक्का या सिगरेट का पैकेट फेंकते. धुआं उगलती ट्रेन दूर-दूर चली जाती. हम सभी दोस्त वहीं रेल की पटरी पर बैठकर भीख का बंटवारा करते, ठाट से सिगरेट पीते और मुंह की गंध छिपाने के लिए चॉकलेट का एक-एक टुकड़ा खा लेते.

एक महीने बाद मेरी आवारागर्दी का पता मेरी मां को चला. पहले तो उसने मेरी ख़ूब धुनाई की. फिर खुद ही रो पड़ी, तुम्हें पढ़ाने के लिए मैं दिन रात मज़दूरी करती हूं. रोते-बिलखते मां ने मुझे याद दिलाया, पड़ोसियों के बरतन मांजती हूं, कपड़े धोती हूं, मिरचियां पीसती हूं. यहां मेरे सीने में आग लगती है और तुम स्कूल जाने के बजाए आवारा कुत्ते की तरह सारे शहर में भटकते हो?

मेरा दिल भर आया. दूसरे दिन से मैंने नियमित स्कूल जाने की शुरुआत की. मेरे हाथ में पाठ्य-पुस्तक के अलावा एक फटा हुआ कॉमिक भी था. कहा जाए तो किसी गोरे सैनिक ने मुझे भीख में दिया था. उसने ट्रेन में से फेंका था और मैंने कैच कर लिया था.

उन दिनों आज की तरह कॉमिक्स प्रकाशनों की भरमार नहीं थी. कभी-कभी किसी दुर्लभ पक्षी की तरह विदेशी कॉमिक कहीं दिखाई पड़ जाता. उस समय मैंने पहली बार कॉमिक देखा था, वह भी चिथड़ेहाल स्थिति में.

उस दिन रिसेस में मैं उसी फटे कॉमिक में से कार्टूनों की नक़ल कर रहा था. मेरी बगल में बैठे एक विद्यार्थी ने मुझे बताया की उसके पड़ोस में एक बड़ा चित्रकार बैठता है. बड़े-बड़े चित्र बनाता है. मैंने पूछा, कितने बड़े? उसने दोनों हाथ फैलाकर बताया, इतने बड़े.

उसी दिन शाम को मैं स्कूल से छूटकर घर न जाकर उसके साथ गया. उसके पड़ोस में डॉ. आर.जे चीनवाला रहते थे. उनका घर रचनाकारों के लिए स्वर्ग समान था. छायाकर, चित्रकार तथा साहित्यकार वहां प्रायः रोज़ एकत्र होते थे और विभिन्न विषयों पर चर्चा होती थी. महीने में एकाध बार किसी नए कवि की कविताओं का पाठ भी आयोजित किया जाता था.

इतना ही नहीं, फिल्म लाइन में अपना नसीब आज़माने हैदराबाद से भाग कर आए उर्दू के एक लेखक तथा काम के लिए जगह तलाशते गुजरात के एक चित्रकार को उन्होंने फ्लैट में आश्रय दिया था. उर्दू के लेखक थे मुश्ताक़ जलीली (*एक फूल दो माली, अवतार* आदि फिल्मों के लेखक) और चित्रकार थे यूसुफ धाला.

मैं जब वहां गया तो उस समय यूसुफ धाला सचमुच मिनिएचर शैली का एक विशाल चित्र तैयार कर रहे थे. मैं आश्चर्य-मुग्ध होकर देखता रहा. मेरे साथ आया विद्यार्थी मुझे अकेला छोड़कर कब खिसक गया, इसका भी होश मुझे नहीं रहा. जब होश आया तो डॉ. चीनवाला मेरी बगल में खड़े थे. पूछा, चित्र अच्छा लगा? मैंने हां कहते हुए जोड़ा, मैं कल भी यह चित्र देखने आ सकता हूं?

क़ब्रिस्तान मक़बरे बनवाने के लिए नहीं होते, वे इंसान को यह याद दिलाने के लिए होते हैं कि देखो यहां बड़े-बड़े सिकंदर और शहंशाह दबे हैं. कोई यहां अमर-पत्र लिखवाकर नहीं आया. सब का अंत यहीं, मिट्टी में होना है, इसलिए चेतो और नेक राह पर चलो.

आबिद! उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा. शायद जाने के पहले मेरे विद्यार्थी मित्र ने उन्हें मेरा परिचय दे दिया था, तुम यहां रोज़ आ सकते हो.

और उस घर में मेरा आना-जाना शुरू हो गया. मैं चीनवाला के महापरिवार का एक सदस्य बन गया. आगे चलकर यूसुफ धाला मेरे लिए कला के क्षेत्र में प्रेरणा-रूप होने वाले थे तो मुश्ताक़ जलीली से मैं साहित्य की सूझ प्राप्त करने वाला था. मेरे भटके हुए जीवन को एक नई दिशा मिलने वाली थी.

नई दिशा तो इंस्पेक्टर भेसाड़िया इक़बाल को भी दिखाने वाला था. पर दिशा-दिशा में फ़र्क़ होता है. एक सकारात्मक थी, दूसरी नकारात्मक. एक प्रगति की ओर जाती थी, दूसरी पतन के मार्ग पर.

यहां फिर वही सवाल खड़ा होता है कि इन दिशाओं को किसने निश्चित किया? मैं डॉ. चीनवाला के संपर्क में क्यों आया और इक़बाल भेसाड़िया के करीब क्यों गया? विधि का विधान? संयोग ?

सूफ़ी के जीवन का उजला पक्ष देखें तो वह साधु-संतों जैसा है. दिन में वह पांचों वक्त की नमाज़ पढ़ता है. रमज़ान के पवित्र महीने में वह तीस दिन के रोज़े रखता है. साधारण मुसलमान और सूफ़ी में फ़र्क़ इतना है कि वह जो कुछ करता है इस्लाम धर्म को समझकर, विचारकर करता है, न कि मुल्ला कहते हैं इसलिए.

एक दिन सूफ़ी से उसकी बीवी मासूमा ने विनती की-इक़बाल, हमारी कौम के क़ब्रिस्तान की हालत ख़स्ता है. दीवारें टूट रही हैं. अंदर का रास्ता चलने के क़ाबिल नहीं. जहां फूलों की क्यारियां होनी चाहिए, वहां झाड़-झंखाड़ उग आए हैं. आप पचासेक हज़ार रुपये खर्च करके उसे ठीक ठाक करा दें तो पूरी क़ौम आप को दुआ देगी.

मैं तैयार हूं, सूफ़ी ने उत्तर दिया-पचास हज़ार नहीं, लाख रुपये ख़र्च कर सकता हूं, पर वह क़ब्रिस्तान इस्लामी होना चाहिए.

मासूमा नहीं समझी, मुर्दों को दफ़नाने में इस्लाम बीच में कहां से घुस आया?

सुनो, उसने अपनी बात स्पष्ट की. इस्लाम ने पक्की क़ब्रें बनाने की इजाज़त नहीं दी है. इसलिए सबसे पहले क़ब्रिस्तान में जितनी संगमरमर की क़ब्रें हैं, उन पर बुल्डोजर चलवाकर समतल कर डालूंगा. अमीर क़ब्र और ग़रीब क़ब्र के अंतर को मिटा दूंगा. जाओ, क़ौम से इजाज़त ले आओ.

मासूमा ख़ामोश हो गई.

आबिद भाई! सूफ़ी ने मुझे बताया, क़ब्रिस्तान मक़बरे बनवाने के लिए नहीं होते, वे इंसान को यह याद दिलाने के लिए होते हैं कि देखो यहां बड़े-बड़े सिकंदर और शहंशाह दबे हैं. कोई यहां अमर-पत्र लिखवाकर नहीं आया. सब का अंत यहीं, मिट्टी में होना है, इसलिए चेतो और नेक राह पर चलो.

सूफ़ी के कमज़ोर पहलू को देखें तो उसकी धारदार बुद्धि के सामने इस देश का कोई भी माफ़िया बौना दिखाई पड़े. उसने वह सब कुछ किया है, जो एक डॉन कर सकता है. पर उसके काम में सूझ होती है, सफ़ाई होती है. वह चाकू की भाषा समझता है, बोलता नहीं. जो काम दो मीठे बोलों से किए जा सकते हों, उनके लिए रिवाल्वर का इस्तेमाल नहीं करता. पुलिस को चुनौती देने के बजाए पुलिस को जेब में रखने से ज़्यादा फ़ायदा होता है, ऐसा वह मानता है. यह सब उसने वर्षों के अनुभव से सीखा है.

इतनी सफ़ाई और सूझ-बूझ के बावजूद उसके व्यक्तित्व का यह कमज़ोर पहलू है, और इसे वह विधि के लेख के रूप में स्वीकार करता है, क्योंकि वह खुद ऐसे काम नहीं करना चाहता, जो खुदा को नापसंद हों. संयोग आ जाने के कारण लाचार होकर उसे ऐसे काम करने पड़ते हैं, क्योंकि यह मेरे भाग्य में लिखा है.

मेरी अपनी मान्यता यह है कि इंसान अपने अच्छे-बुरे कर्मों के लिए खुद जिम्मेदार होता है.

अगर ऐसा ही है, तब तो ज्योतिशास्त्र एकदम ग़लत सिद्ध होगा, वह तर्क देता है.

यहां मुझे औरंगज़ेब के दरबार में हुई एक कथित घटना याद आती है. इस मुग़ल बादशाह को अल्लाह और क़ुरान में संपूर्ण श्रद्धा थी, पर नजूमियों और उनकी विद्या में तनिक भी नहीं. उसके विश्वास के अनुसार सिर्फ़ अल्लाह ही भविष्य को जानने वाला है. (क़ुरान भी यही कहता है) अल्लाह के सिवा आने वाले कल को जानने का दावा कोई नहीं कर सकता. और औरंगज़ेब का दीवान एक विद्वान पंडित को लेकर एक दिन दरबार में हाज़िर हुआ. औरंगज़ेब ने उससे सिर्फ़ दो सवाल पूछे. पहला था, मेरी ज़िंदगी कितने साल की है?

विद्वान पंडित ने गणना करके उसे अमुक वर्ष बताए. औरंगज़ेब ने अब दूसरा और आख़िरी प्रश्न पूछा-पंडित जी, आपकी आयु कितनी है ?

अपनी आयु वह जानता था, इसलिए उसने गर्व से बताया-जहांपनाह! इस समय मैं साठ वर्ष का हूं और मेरे भाग्य में पिचानवे दीवालियां देखनी लिखी हैं.

उसी पल औरंगज़ेब ने तलवार निकाली और उसका सिर धड़ से अलग कर दिया.

मैंने मूल विषय का सूत्र हाथ में लेते हुए सूफ़ी से पूछा, इंस्पेक्टर भेसाड़िया को कैसे भनक लग गई?

उसने थोड़ी देर सोचने के बाद अपने जीवन की कथा आगे बढ़ाई. उन दिनों इक़बाल के ही एक रिश्तेदार जाफ़र टाइट की डोंगरी क्षेत्र में खासी धाक थी. उसके साथ टकराने का मतलब अब्दुल रहमान काफ़रिया को ललकारना होता था, क्योंकि उस दादा का उसे समर्थन था. आज भी उस दादा का नाम सुनकर यहां के पुराने किराएदार थर्रा उठते हैं.

बुजुर्ग लोग बताते हैं कि अब्दुल रहमान काफ़रिया का पंजा फौलाद की तरह मज़बूत था. किसी जबड़े पर एक हाथ पड़ जाता तो वह आदमी पानी तक नहीं मांगता. एक ही घूंसे में सामने के व्यक्ति का सिर फट जाता था.

ये दिन वे भी थे जब अज़ीज़ दिलीप छोटे पिल्ले से बढ़कर खूंख्वार कुत्ता बन रहा था. जाफ़र टाइट के कान खड़े हो गए थे. दोनों के बीच चिंगारियां झड़ने की शुरुआत हो चुकी थी. अज़ीज़ दिलीप ने उसी मकान में घर लिया, जिसमें जाफ़र टाइट रहता था. यह मकान *वेलसी लालजी बिल्डिंग* मुंडागली जैसा ही तिकड़मी है. मुंडागली में तीन प्रवेश हैं, तो इसमें दो. एक प्रवेश ख़ोजा मस्जिद वाले रास्ते पालागली में से है, तो दूसरा प्रवेश उसी के सामानंतर जाते हुए भीमपुरा में से. गुंडा तत्वों के लिए यह मकान वरदान है.

(अगले अंक में जारी)

राशिफल

(18 मई से 24 मई तक)

मेष
21 मार्च से 20 अप्रैल

इस सप्ताह आपको कहीं की यात्रा करनी पड़ सकती है. सफलता के लिए ज़रूरी है कि आप अपने व्यय पर नियंत्रण रखें. इस हफ्ते आपके आसपास एक नई ऊर्जा और उत्साह का माहौल बनेगा, जो दूसरों के सहयोग से और भी फायदेमंद होगा. इस सप्ताह व्यावसायिक मामलों में विशेष सफलता का भी योग है.

वृष
21 अप्रैल से 20 मई

इस सप्ताह नए संपर्क बनाना और पुराने दोस्तों से फिर मिलना आपके लिए अच्छा रहेगा. ऐसी परिस्थितियां बन रही हैं जहां कार्यस्थल पर प्रतियोगिता का माहौल रहेगा. अपनी शिक्षा और ज्ञान के बल पर ही आप इस में जीत हासिल कर सकेंगे. व्यावसायिक मामलों में नए आयामों की खोज से फायदे के सौदे मिलने के आसार हैं.

मिथुन
21 मई से 20 जून

आप इस वक्त कई नई योजनाओं में व्यस्त हैं, अगर खर्च पर नियंत्रण रख सकें तो ये योजनाएं ज़रूर सफल होंगी. काम में व्यस्त होने का यह मतलब नहीं कि आप अपने नज़दीक रहने वाले लोगों को भूल जाएं. निकट के संबंधियों से आपको शुभ समाचार मिल सकता है. व्यवसाय में पुराने निवेशों पर डटे रहें, लाभ होगा.

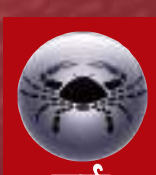

कर्क
21 जून से 20 जुलाई

इस सप्ताह सबको साथ लेकर चलने में ही आपकी सफलता छिपी है. यह छुट्टियों का समय है, ऐसे में काम के साथ आप थोड़ा वक्त ख़ुद को भी दे सकेंगे. नई योजनाओं की सफलता के लिए आवश्यक है कि सोच-समझ कर कदम उठाएं. व्यापार के मामलों में विवाद की आशंका है, तनाव से बचें.

सिंह
21 जुलाई से 20 अगस्त

यह मनोरंजन का समय है. इसलिए ज़रूरी है कि आप स्वयं को विश्राम का अवसर दें. इसका अर्थ यह भी होगा कि आपके खर्चों में बढ़ोतरी होगी, लेकिन परिवार के सदस्यों का साथ भी मिलेगा. काम के क्षेत्र में भी सितारे आपके साथ हैं. व्यावसायिक मामलों में अगर आप स्वयं पर नियंत्रण रखकर नए निवेश करें, तो अधिक लाभ मिल सकते हैं.

कन्या
21 अगस्त से 20 सितंबर

काफी लंबे समय से आप सम्मान, प्रतिष्ठा और धन प्राप्ति दिशा में लगातार प्रयास कर रहे हैं. इस लिहाज से अब वह समय आ गया है कि आपको इसका लाभ मिले. आपके सम्मान और प्रसिद्धि में इस सप्ताह बढ़ोतरी होगी. सहयोगियों का साथ मिलेगा. व्यवसाय के मामलों में धैर्य से काम लें तो फायदा होगा. नए निवेश से बचें.

तुला
21 सितंबर से 20 अक्तूबर

इस सप्ताह आप स्वयं को कई लोगों और परिस्थितियों से घिरा हुआ पाएंगे. याद रखें, आपकी चिंता स्वयं आप को ही करनी है. हालांकि सब कुछ निराशाजनक ही नहीं है, अच्छे समाचार भी आने वाले हैं. व्यावसायिक मामलों में आपको स्वयं को सुरक्षित कर थोड़ा ज़ोखिम लेने की ज़रूरत है. बड़ा लाभ मिल सकता है.

वृश्चिक
21 अक्तूबर से 20 नवंबर

तुला राशि वालों की तरह ही आप भी कई लोगों के बीच हैं. किसी पर भरोसा न करें. ऐसा घातक हो सकता है. किसी को आर्थिक मदद देते समय भी यह बात याद रखें. अपनी भविष्य की योजनाओं को तय करने में अतिरिक्त समझदारी बरतें. नया सप्ताह यात्रा और दूसरे खर्चे लेकर भी आएगा. व्यावसायिक मामलों में लेनदेन में सावधानी रखें.

धनु
21 नवंबर से 20 दिसंबर

इस सप्ताह कहीं से अचानक ही कोई प्रेरणा प्राप्त हो सकती है. रोजाना के कामकाज में सावधानी बरतने की ज़रूरत है. परिवार के साथ समय बिताने को मिल सकता है. काम आवश्यक है, लेकिन साथ ही स्वास्थ्य पर ध्यान देने की भी ज़रूरत है. कार्यस्थल पर नए मित्र बनेंगे. व्यावसायिक मामलों में नए संबंध बनाना लाभकर होगा.

मकर
21 दिसंबर से 20 जनवरी

यह सप्ताह आपके पारिवारिक संबंधों में नई ऊंचाई लेकर आएगा. आपके निकट के संबंध और भी मधुर होंगे. इसके अलावा कार्यालयीय और व्यावसायिक मामलों में किए जा रहे प्रयास सफल होंगे. वैसे काम के साथ-साथ आराम का भी ध्यान रखें. नई जगह पर सैर करने की योजना बन सकती है. अचानक ही कहीं से धन का लाभ हो सकता है.

कुंभ
21 जनवरी से 20 फरवरी

हर अच्छी बात अपने साथ कोई बुरी बात भी लेकर आती है. इस हफ्ते आय तो बढ़ेगी लेकिन खर्चे भी कम नहीं रहेंगे. अच्छी बात यह कि पुरानी समस्याओं का हल अब निकल आएगा. यह पार्टी का समय है, लेकिन स्वास्थ्य का ध्यान रखने की भी ज़रूरत है. व्यवसाय में यह सप्ताह लाभकारी रहेगा.

मीन
21 फरवरी से 20 मार्च

किसी भी आपसी समस्या के हल के लिए एक साथ समय बिताने से बेहतर विकल्प नहीं है. आप सफलता के रास्ते पर चल रहे हैं, लेकिन अति आत्मविश्वास आपको नुकसान दे सकता है. दूसरों पर भी आंख मूंद कर भरोसा कतई न करें. व्यावसायिक मामलों में आपके जो प्रयास चल रहे थे, उनका परिणाम फायदे में ही होगा. धैर्य बनाए रखें.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

चार चरण के मर्म में है धर्म

व्यालोक

धर्म शब्द की उत्पत्ति धृ धातु से हुई है. इसका अर्थ होता है-रखना, संभालना और बचाना. सच पूछिए तो धर्म के मायने क्या हैं? इसका मतलब है-प्रकृति और मानव जीवन एवं व्यवहार में व्यवस्था के साथ चलना. नियम का पालन करना. धर्म का इस्तेमाल न्याय के संदर्भ में भी होता है. साथ ही हर उस संदर्भ में किया जाता है जो तर्कसंगत है, न्यायपूर्ण है, नैतिक है और व्यक्तियों के लिए पवित्र है. धर्म का अर्थ बहुआयामी होता है. यह जीवन के हरेक अंग, हरेक संदर्भ में व्याप्त है. यह जीवन के नैतिक मूल्यों, पवित्र पद्धतियों और दूसरों के कल्याण से संबंधित है. धर्म के अंतर्गत दैवीय नियम, जीवन की शैली, नैतिकता का रास्ता, कर्तव्य, धार्मिकता, मानवीय गुण, न्याय और सत्य जैसी बातें भी आती हैं. धर्म वह नियम है, जो ब्रह्मांडीय व्यवस्था के साथ ही व्यक्तिगत और सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखता है. इस तरह धर्म प्रकृति के साथ मानवीय ज़िंदगी का तारतम्य बैठाता है.

धर्म मूलतः संस्कृत का शब्द है. किसी भी भाषा में इसका समतुल्य शब्द नहीं है. *धारयति इति धर्मः* यानी जो कुछ भी हम करते हैं, वही धर्म है. धर्म की व्याख्या संक्षेप में यही कह कर की जा सकती है कि इसी की वजह से यह पूरी सृष्टि टिकी हुई है. धर्म की चर्चा या उसकी बात ही सनातनी के मन में कहीं गहरे आत्मविश्वास जगाती है. इसी वजह से एक सनातनी कहीं गहरे यक़ीन करता है कि सत्य की हमेशा जय होती है, धर्म की राह से विचलित होनेवाला खुद ही कहीं मारा जाता है और यह पूरी दुनिया धर्म की वजह से ही चल रही है.

महाभारत में धर्म की परिभाषा कुछ इस तरह दी गई है-

धारणात धर्मामित्याहु धर्मो धरायते प्रजाह
यतस्याद धारणासम्युक्तम सा धर्म इति निश्चयह।।

-यानी धर्म ही समाज को धारण करता है, यही सामाजिक व्यवस्था को चलाता है. धर्म ही मानवता के स्वास्थ्य, कल्याण और विकास को सुनिश्चित करता है. धर्म निश्चित तौर पर वह चीज़ है, जो इन उद्देश्यों को पूरा करता है. इस तरह धर्म उन सभी उचित व्यवहारों का समुच्चय है जो जीवन के लिए आवश्यक हैं और व्यक्ति एवं समाज की बेहतरी के लिए काम आते हैं. इसके अंदर वे नियम भी आते हैं जो हमें मोक्ष प्राप्त करने की दिशा में निर्देशित करते हैं.

यहां सवाल उठता है कि आख़िर सही क्या है? सनातन धर्म के निदेशक ग्रंथों के अनुसार कुछ नियमों का पालन करके सही और ग़लत की पहचान की जा सकती है.

स्वधर्म का पालन सत्य, अहिंसा और नैतिक मूल्यों का पालन कर समझा जा सकता है. इसी तरह राजनीतिक, सामाजिक और सामुदायिक गतिविधियों-जो निःस्वार्थ भाव, सत्य, अहिंसा और नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों पर आधारित हों-के पालन से भी धर्म का पालन किया जाता है.

सनातन धर्म में जीवन के चार चरण माने गए हैं और इनके सही ढंग से पालन को ही धर्म कहते हैं. इंसानी जीवन में चार आश्रम माने गए हैं और आज की भागदौड़ वाली ज़िंदगी में भले ही इनका महत्व कम हो गया हो, फिर भी यह सनातन धर्म की मूल परंपरा के अनुरूप है. ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम के चार चरणों को पूरा कर ही मानव जन्म-मृत्यु के बंधन से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करता है.

vyalok.chauthiduniya@gmail.com

गंगा दशहरा

हिंदुओं का प्रसिद्ध त्योहार गंगा दशहरा 25 मई को है. यह ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को मनाया जाता है. इस तिथि को यदि बुधवार और हस्त नक्षत्र हो तो यह तिथि सभी पापों को हरण करने वाली मानी जाती है. इस दिन दान का विशेष महत्व है. गंगा इस दिन स्वर्ग से धरती पर उतरी थी. गंगा जीवमात्र का कल्याण करने के लिए ही पृथ्वी पर आई. मनुस्मृति के अनुसार बिना दिए हुए दूसरे की वस्तु लेना, शास्त्र में वर्जित हिंसा करना तथा परस्त्रीगमन-ये तीन शारीरिक पाप हैं. कटु बोलना, झूठ बोलना, पीठ पीछे चुगली करना तथा बकवास-ये चार वाणी के द्वारा होने वाले पाप हैं. दूसरे के धन को हड़पने की योजना बनाना, मन में दूसरे के लिए बुरा सोचना और नास्तिकता-ये तीन मानसिक पाप हैं. इन तीन कायिक, चार वाचिक और तीन मानसिक पापों का नाश ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन गंगा-स्नान करने से होता है. इस तिथि को गंगा-दशहरा के नाम से प्रसिद्धि मिली.

उत्तर-प्रदेश में गंगा दशहरा के पावन पर्व पर अयोध्या, वाराणसी, इलाहाबाद और कानपुर समेत अनेक स्थानों पर लाखों श्रद्धालु डुबकी लगाते हैं. बिहार में सिमरिया, पटना और भागलपुर आदि स्थानों पर लोग गंगा में स्नान करते हैं. धर्म ग्रंथों में ऐसा वर्णन है कि राजा भगीरथ ने अपने पुरखों को मुक्ति प्रदान करने के लिए भगवान शिव की अराधना करके गंगा जी को स्वर्ग से उतारा था. जिस दिन वे गंगा को इस धरती पर लाए, वही दिन गंगा दशहरा के नाम से जाना जाता है. ऐसी मान्यता है कि इस दिन व्रत-उपवास, दान-ताप आदि करने से दस तरह के पापों का नाश होता है.

एक विश्वास है कि गंगा दशहरा के दिन गंगा स्नान करने से विशेष पुण्य मिलता है. जहां गंगा आस-पास नहीं होती है, वहां किसी भी अन्य नदी या तालाब में लोग स्नान करने जाते हैं. इस दिन नदियों के किनारे एक तरह से मेले जैसा दृश्य देखने को मिलता है. इस दिन नीलकंठ पक्षी को देखना शुभ माना जाता है, क्योंकि वह भगवान शंकर का प्रतीक है. अगर वैज्ञानिक ढंग से इस दिन गंगा स्नान की बात करें, तो यह परंपरा ऋतु के अनुसार ही बनी है. गर्मी के मौसम का यह अंतिम गंगा स्नान होता है. इसके बाद वर्षा ऋतु का आगमन शुरू हो जाता है. सभी नदियों में गंदा और प्रदूषित पानी हो जाता है जो नहाने योग्य नहीं रह जाता. इसीलिए चतुर्मास में नदियों में स्नान के पर्व का जिक्र कम ही है. गंगा दशहरा के दिन जब लोग स्नान करने जाते हैं तो वहां के जल स्रोतों व उनके कूल-किनारों को भी देख आते हैं, जो बाद में बारिश के कारण नष्ट हो जाते हैं और उन्हें फिर से लोगों के इस्तेमाल के लिए बनाना होता है. युगों-युगों से बहने वाली गंगा की धारा महाराज भगीरथ की कष्टमयी साधना की गाथा कहती है. गंगा प्राणियों को जीवनदान ही नहीं देती, बल्कि मुक्ति भी दिलाती है.

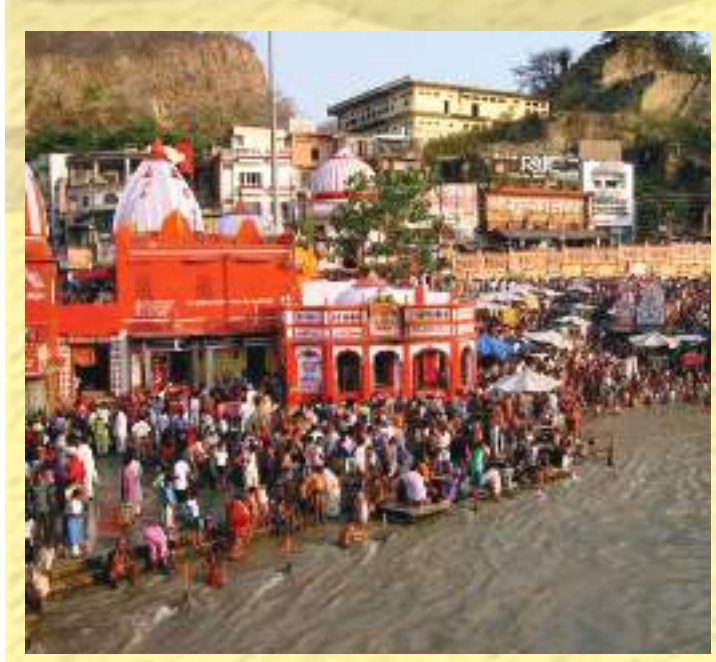

वट सावित्री व्रत-पूजन

वट सावित्री व्रत ज्येष्ठ मास की कृष्ण पक्ष अमावस्या को मनाया जाता है. इस बार यह 24 मई को है. यह व्रत सौभाग्य और संतान की प्राप्ति में सहायता देने वाला व्रत माना गया है. भारतीय संस्कृति में यह व्रत आदर्श नारीत्व का प्रतीक बन चुका है. पुराणों में एक कहानी है कि मद्य देश के राजा अश्वपति की पुत्री सावित्री का विवाह द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान से हुआ था. विवाह के पहले देवर्षि नारद ने कहा था कि सत्यवान केवल एक वर्ष जीवित रहेगा. लेकिन अपने तप और दृढ़निश्चय से सावित्री ने न केवल अपने सास-ससुर के अंधत्व का निवारण किया, बल्कि उनका खोया हुआ राज्य भी उनको वापस दिलाया था. अंत में यमराज से उसने अपने लिए सौ पुत्रों का वर मांगा. यमराज के एवमस्तु कहने पर सावित्री ने उनसे अपने पति सत्यवान को मृत्युपाश से मुक्त करने को कहा, क्योंकि उसके बिना संतान कहां से आती. इस तरह सावित्री ने यमराज से अपने मृत पति को पुनः जीवित करने का वरदान एक वट वृक्ष के नीचे ही पाया था. सावित्री ने इसी व्रत के प्रभाव से अपने मृतक पति सत्यवान को धर्मराज से छुड़वाया था. तब से हिंदू महिलाएं अपने पति के जीवन और सौभाग्य के लिए वट सावित्री का व्रत करने लगीं. यह महिलाओं का महत्वपूर्ण व्रत है. वट वृक्ष के नीचे मिट्टी की बनी सावित्री और सत्यवान तथा भैंसे पर सवार यम की प्रतिमा स्थापित कर पूजा करनी चाहिए तथा बड़ की जड़ में पानी देना चाहिए. पूजा के लिए जल, मौली, रोली, कच्चा सूत, भिगोया हुआ चना, फूल तथा धूप होनी चाहिए. जल से वट वृक्ष को सींच कर तने के चारों ओर कच्चा धागा लपेट कर तीन परिक्रमा करनी चाहिए. इसके बाद सत्यवान सावित्री की कथा सुननी चाहिए. वृक्ष के नीचे बैठकर पूजन, व्रत कथाआदि सुनने से सभी मनोकामनाएं पूरी होती हैं. पुराणों में यह भी स्पष्ट किया गया है कि वट में ब्रह्मा, विष्णु व महेश तीनों का वास है. इसके बाद भींगे हुए चने का बायना निकाल कर उस पर कुछ रुपए रखकर अपनी सास को देना चाहिए और उनके चरण स्पर्श करना चाहिए. वट सावित्री व्रत में वट और सावित्री दोनों का विशिष्ट महत्व माना गया है. पीपल की तरह वट या बरगद के पेड़ का भी विशेष महत्व है. वट वृक्ष ज्ञान व निर्वाण का भी प्रतीक है. भगवान बुद्ध को भी इसी वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त हुआ था. इसलिए वट वृक्ष को पति की दीर्घायु के लिए पूजना इस व्रत का अंग बन गया. वृक्षों में भी भगवत चेतना का वास है. यही ज्ञान हमारे शास्त्रों का वृक्षोपासना का आधार है. वट वृक्ष अपनी विशालता के लिए भी प्रसिद्ध है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

दुनिया

चाहे तुम कुछ न कहो मैंने सुन लिया...

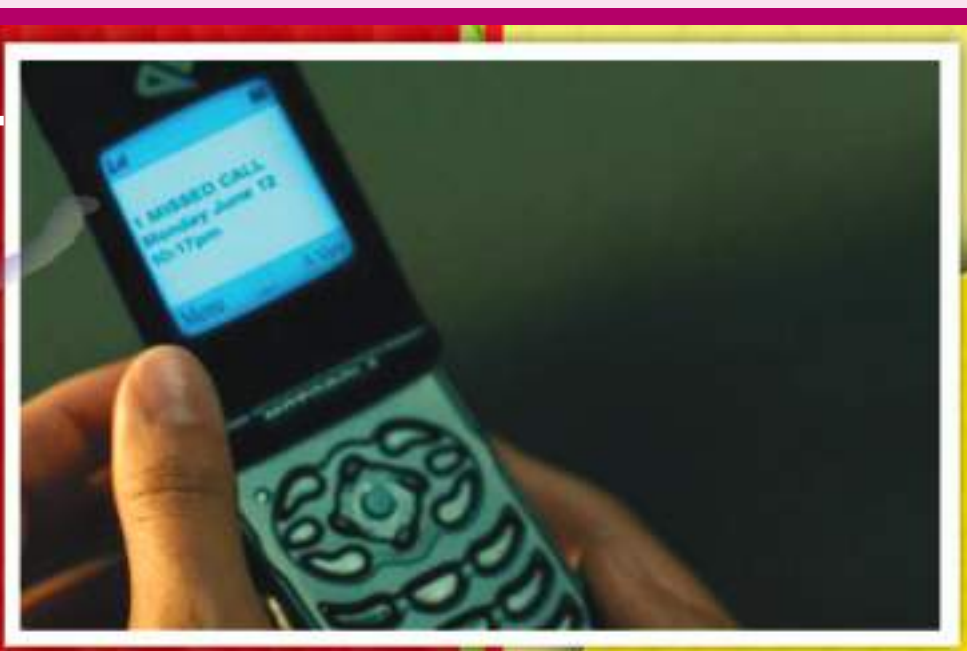

कहते हैं कि कभी-कभी बिना कुछ बोले भी बहुत कुछ कहा जा सकता है. भारत की नई पीढ़ी यानी जेनरेशन-वाई से बेहतर इस बात को कोई नहीं समझ सकता. इस पीढ़ी के युवाओं ने अपनी एक ऐसी भाषा बना ली है, जहां किसी के कुछ कहे बिना भी बात हो जाती है. बस एक मिस्ड कॉल, और एक के मन की बात दूसरे तक पहुंच जाती है. एक स्टडी के अनुसार भारतीय युवा वर्ग अपनी ज़िंदगी के चार साल मोबाइल फोन पर बिता देता है. यानी रोजाना लगभग 70 मिनट. वह तो भला हो इस मिस्ड कॉल का, वरना यह आंकड़ा और कई गुना बड़ा होता.

वैसे मिस्ड कॉल की भाषा भी बड़ी मज़ेदार होती है. इसमें अलग-अलग भाव हैं, अलग-अलग अंदाज़ है. कभी मिस्ड कॉल का मतलब किसी को याद करना है तो कभी किसी को यह संदेश देना कि आपकी ज़रूरत है. *क्लास पहुंचकर मिस्ड कॉल दे देना* या *काम हो जाए तो मिस्ड दे देना* जैसे जुमले अब हमारी भाषा का हिस्सा हैं. ग़ौरतलब है कि भारत में 60 करोड़ के आसपास मोबाइल यूजर्स हैं और इनमें से अधिकतर युवा हैं. ऐसे में मिस्ड कॉल की यह भाषा सुपरहिट है.

कॉल सेंटर में काम करने वाले नमन कहते हैं-मिस्ड कॉल तो मेरी लाइफलाइन की तरह है, जब मेरी कैब मुझे लेने आती है तो मिस्ड कॉल से ही मुझे पता चलता है.

उधर, आरिफ के लिए मिस्ड कॉल ही मैसेज़ का काम करता है. वह कहते हैं कि रात को मिस्ड कॉल का मतलब गुड नाइट और सुबह-सुबह गुड मॉर्निंग.

मिस्ड कॉल के मायने कभी समय के हिसाब से तय होते हैं तो कभी कितनी बार मिस्ड कॉल आई इससे उसका मतलब पता चल जाता है. उदाहरण के लिए अगर किसी सवाल का जवाब देना हो तो एक मिस्ड कॉल का मतलब है-हां, वहीं दो मिस्ड का मतलब है-न. मिस्ड कॉल की आधी घंटी का मतलब है *ज़रूरी काम है कॉल करो.* दोस्तों और प्यार करने वालों के बीच इन मिस्ड कॉल का अपना कोडवर्ड है. हर मिस्ड कॉल के मैसेज़ का मतलब अलग होता है.

साफ है कि यह मिस्ड कॉल का आइडिया किफायती भी है और आसान भी. हालांकि ऐसा नहीं है कि मिस्ड कॉल का यह आइडिया इस नए जेनरेशन की ही पहचान भर है. ऐसी सोच तो हमारी ख़ालिस भारतीय पहचान का हिस्सा हैं. दरअसल मिस्ड कॉल का यह खेल पूरा भारतीय है. हम भारतीयों के लिए किफायत और सुविधा का बड़ा महत्व है. फिजूलख़र्ची से बचना और इसके लिए नए रास्ते तलाश लेना हमारी ख़ासियत हैं. जब संदेश ही पहुंचाना हो तो वह तरीका क्यों न चुना जाए, जो सबसे आसान हो और जिससे जेब पर भार भी न पड़े. अब मोबाइल कंपनियां दाम बढ़ाएं या घटाएं, हमारे पास सबसे बेहतर इलाज़ हैं.

हालांकि कुछ ऐसे भी लोग हैं जो मिस्ड कॉल से ज़रा खफा से रहते हैं. इनका मानना है कि मिस्ड कॉल कुछ लोगों की कंजूसी भर है, जो कॉल करने से अपने पैसे बचाना चाहते हैं. वैसे इनकी बात सही भी है, कई ऐसे लोग हैं जिन्हें मिस्ड कॉल करने की आदत-सी लग जाती है. फिर वह कॉल नहीं करेंगे, चाहे कितनी भी ज़रूरी बात ही क्यों न हो.

वैसे मिस्ड कॉल के अलावा भी अपनी बात दूसरों तक सस्ते में पहुंचाने के कई तरीके हैं. अगर आप अपने दोस्त या चाहने वाले की सामने वाली खिड़की में रहते हैं तो टार्च की रोशनी फेंककर इशारा कर सकते हैं. यह उपाय न जमे (अगर किसी ने देख लिया, तो इसमें शारीरिक नुकसान की संभावना है) तो सबसे पुराना उपाय तो है ही. अरे वही, सदाबहार उपाय कबूतरों वाला.

फोन है या गहना

जहां अधिकतर मोबाइल कंपनियां मंदी की मार झेल रही हैं, वहीं एप्पल की चमक और बढ़ रही है. यह चमक है एप्पल के नए आई फोन 3-जी की. एप्पल का यह नया अवतार सच में सुनहरा है, क्योंकि इस पर सोने की परत भी चढ़ी हुई है. इसलिए इसे कोई गहना ही कह दे, तो वह कतई ग़लत नहीं होगा.

एप्पल के सबसे ज़्यादा बिकने वाले आईफोन की धूम बाज़ार में वैसे तो पहले से ही है, लेकिन अब लगता है कि सोने पर सुहागा सज गया है. 22 कैरेट सोने और बेशकीमती रत्नों से सजे इस नए आईफोन की बात ही अलग है. इस फोन में 22 कैरेट सोने का ठोस कवर है, तो एप्पल के लोगो को 53 हीरों से बनाया गया है. इस बेहतरीन डिज़ायन का श्रेय जाता है मशहूर डिज़ायनर स्टुअर्ट ह्यूज को.

जहां तक फीचर्स की बात है, तो इस फोन में वे सभी फीचर्स मौजूद हैं जो आम एप्पल 3-जी फोन में होते हैं. यानी सोने की चमक के साथ-साथ 16 जीबी की मेमोरी, 320 बाई 480 की टचस्क्रीन, ब्लूटूथ, वायरलेस लोकल एरिया नेटवर्क 802.11 बी/जी (वाई-फाई), 2 मेगापिक्सल कैमरा और माइक्रोफोन. गुणवत्ता के मामले में सब के सब बेजोड़ हैं.

सबसे अच्छी बात है कि यह फोन अनलॉक्ड होगा यानी कि किसी भी नेटवर्क को इस फोन में इस्तेमाल किया जा सकता है. आमतौर पर यह एक समस्या होती है, जिससे मुक्ति की इच्छा हर उपभोक्ता रखता ही है. लेकिन उत्साहित होकर आप अगर इस फोन खरीदने तुरंत निकल पड़ने की सोच रहे हैं, तो रुकिए. इसलिए कि इस फोन को किसी दुकान से खरीदा नहीं जा सकता. इसके लिए ख़ास तौर पर स्टुअर्ट ह्यूज की वेबसाइट पर जाना होगा और वहां जाकर आर्डर देना होगा.

अब बात ज़रा कीमत की हो जाए. कहना न होगा कि जब इसमें सोना है, तो महंगा भी होगा. यानी आम उपभोक्ता की पहुंच से बाहर होगा. एकदम सच, इस फोन की कीमत है लगभग 17 लाख रुपये.

ज़ाहिर है, फोन को सोने और महंगे फोनों के शौकीनों को ध्यान में रख कर बनाया गया है. यकीनन इसका बाज़ार छोटा होगा, लेकिन ठोस होगा. यह आन-बान-शान की तलाश में रहने वालों के बीच ही शोभा पाएगा.

इतनी क़ीमत चुकाने के बाद जो इस बेशक़ीमती फोन के मालिक बन सकते हैं, उन्हें निश्चय ही खजाने की खोज के लिए कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी. यकीन मानिए, जेब में हाथ डालते ही खजाना आपकी मुट्ठी आ जाएगा.

गन है या माउस

काम की ढेर सारी टेंशन है और मन नहीं लग रहा. ऐसे में काम को गोली मारो, यार. नहीं-नहीं, आपको काम छोड़ कर मस्ती करने की सलाह नहीं दी जा रही है. मतलब यह कि काम को निपटा डालिए, वह भी अपने नए गन-माउस के साथ. जब एक ही तरह से काम करते-करते आपका मन थक जाए तो गन-माउस आपका दिल बहलाएगा और आपको परेशान करने वाले सहकर्मियों को डराएगा भी. गन जैसा दिखने वाला यह माउस किसी आम माउस की तरह ही काम करता है. इसमें भी वे तमाम चीजें हैं जो एक साधारण माउस में होती हैं. फर्क बस इतना है कि यहां आपको लेफ्ट क्लिक की जगह गन-माउस के ट्रिगर को दबाना पड़ता है. राइट क्लिक के लिए भी गन के होल्सटर पर जगह बनी हुई है. यानी काम को पूरे माफिया स्टाइल में निपटाएं. आम माउस से बस थोड़ा महंगा है यह. इसे इंटरनेट से आर्डर करके मंगाया जा सकता है.

यानी, अगली बार अगर काम टेंशन दे तो सिर नहीं दबाने का, घोड़ा यानी गन माउस का ट्रिगर दबाने का और काम को खल्लास कर डालने का. समझे?

ऑरिजीनः वॉल्वरीन की. कुछ साल पहले *एक्स मेन* सीरीज़ की आख़िरी फिल्म आई थी, लेकिन इसके प्रशंसकों के प्यार ने उसके किरदारों को जिंदा रखा और अब *एक्स मेन* का प्रीक्वल अलग-अलग एक्स मेन हीरो को लेकर आ रहा है. इसी की पहली किस्त है *वॉल्वरीन.* फिल्म के साथ-साथ गेम भी लांच हो रहा है. गेम की ख़ासियत है इसका बेहतरीन एक्शन और इफेक्ट्स. फिल्म में भी नज़र नहीं आने वाले हैरतअंगेज स्टंट्स यहां आपको नज़र आएंगे. हालांकि गेम की फ्रेम स्पीड बढ़े तो बेहतर होगा. *वॉल्वरीन एक्स मेन* सीरीज़ का सबसे हिंसक किरदार है. ऐसे में नॉन-स्टॉप एक्शन की उम्मीद तो होनी ही है. नए किरदार जैसे गेम्बिट, एजेंट एक्स और पुराने किरदार जैसे सैबरटूथ के साथ वॉल्वरीन के मुक़ाबले इस गेम की जान है. हेलीकॉप्टर और ऊंची इमारतों पर होने वाले मुक़ाबले गेमर्स को पसंद आएंगे. किसी भी ए-ग्रेड गेम से यह किसी मामले में कम नहीं.

गेम दुनिया-एक्स मेन ऑरिजीन : वॉल्वरीन

वर्ष 2009 को गेमिंग और फिल्मों की दोस्ती के साल के तौर पर याद रखा जाएगा. इस साल फिल्मों से जुड़े गेमों ने ख़ूब कमाल किया है. गेमिंग की दुनिया और फिल्मों का रिश्ता बड़ा पुराना है. अधिकतर फिल्मों ने अपने गेम वर्जन लांच कर लोकप्रियता बटोरनी चाही, तो वहीं *रेसिडेंट एविल* और *लारा क्रॉफ्ट* जैसे गेम इतने लोकप्रिय हुए कि उनपर सुपरहिट फिल्में बन गईं. इतनी नज़दीकियों के बाद भी अक्सर फिल्मी गेमों को बस पब्लिसिटी स्टंट के तौर पर देखा जाता था, लेकिन 2009 में आए गेमों ने दिखा दिया है कि फिल्मी किरदारों पर बने गेम भी ऑरिजिनल को टक्कर दे सकते हैं. पहले *बैटमेन एसाइलम* और अब *एक्स मेन ऑरिजीनः वॉल्वरीन,* 2009 में आए फिल्म आधारित गेमों ने गेमिंग की दुनिया में अपनी जगह बना ली है.

ख़ैर, अब बात इस महीने रिलीज़ हुए गेम *एक्स मेन*

प्लाज़्मा में नया धमाका

प्लाज़्मा की दुनिया में मात्र एक इंच पतली स्क्रीन तक पहुंचना एक ऐसा मुकाम है, जिसे पाने के लिए सभी प्लाज़्मा स्क्रीन बनाने वाली कंपनियां बेताब हैं. अब सैमसंग ने एक ऐसा प्लाज़्मा लांच किया है जो इस मुकाम के काफी नज़दीक पहुंच गया है. इस स्क्रीन की मोटाई 29 मिलीमीटर यानी कि एक इंच से थोड़ी ज़्यादा है. दरअसल सैमसंग ने अपने पुराने पीडीपी (प्लाज़्मा डिसप्ले पैनल) को नए अवतार में उतारा है. फिलहाल साउथ कोरिया में लांच हुए इस मॉडल को जल्द ही भारत में भी लाने की योजना है. अपने पतले आकार के साथ-साथ यह नया मॉडल 40 फीसदी अधिक ऊर्जा बचाता है, अपने पिछले अवतार से 20 फीसदी हल्का भी है और 120 फीसदी अधिक ख़ूबसूरती का दावा करता है. 50 और 58 इंच के आकार में आने वाले इन पीडीपी में एक यूएसबी सॉकेट, डीएलएनए (डिजीटल नेटवर्क लीविंग अलायंस), डिवएक्स की सुविधा भी मौजूद है. ख़ैर, ये सब तो तकनीकी बातें हैं. लेकिन जो सबसे ज़रूरी है, वह इस प्लाज़्मा की ख़ूबसूरती. ख़ूबसूरती के मामले में इस पीडीपी का कोई जवाब नहीं. सैमसंग का यह नया अवतार प्लाज़्मा के उन आलोचकों को एक चुनौती भी है जो प्लाज़्मा के अंत की भविष्यवाणी कर रहे हैं. कई आलोचक कह रहे हैं कि ऑप्टिकल लाइट एमिटिंग डायोड (ओएलईडी) के आ जाने से प्लाज़्मा डिसप्ले पैनलों का दौर ख़त्म होने को है. इस लांच से सैमसंग ने ज़ाहिर कर दिया है कि उसने अभी उम्मीद नहीं खोई है. सैमसंग के इस कदम से अन्य प्लाज़्मा उत्पादक कंपनियों को भी नया जोश मिला होगा. वैसे इस नए पीडीपी की क़ीमत क्या होगी यह अभी साफ नहीं हो पाया है. हालांकि सैमसंग से कुछ अप्रत्याशित करने की उम्मीद है. ऐसे में इसकी क़ीमत क्या होगी और भारत में यह कब उतरेगें यह सवाल लाख टके का है और यही वह बात है जिसने सैमसंग के प्रतियोगियों की नींद उड़ा दी है.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

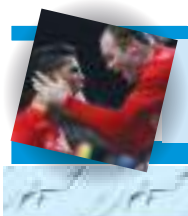

कमाई आगे, देशहित पीछे

आईपीएल-2 भारत को काफी महंगा पड़ने वाला है. दक्षिण अफ्रीका में चल रहा यह टूर्नामेंट भारतीय क्रिकेटरों को घायल कर रहा है. डर है कि टूर्नामेंट ख़त्म होते-होते कहीं हमारे आधा दर्जन खिलाड़ी घायल न हो जाएं. पांच जून से इंग्लैंड में होने वाले ट्वेंटी-20 विश्व कप के लिए चुने गए क्रिकेटरों में से अब तक चार घायल हो चुके हैं. चोट की गंभीरता देखिए कि विस्फोटक बल्लेबाज वीरेंद्र सहवाग और तेज़ गेंदबाज ज़हीर ख़ान को बीच टूर्नामेंट में ही खेल छोड़कर बैठना पड़ गया है. इतना ही नहीं, युवराज सिंह

की अंगुली में चोट लगी हुई है तो कप्तान महेंद्र सिंह धोनी कमर दर्द से परेशान हैं. लेकिन कमाई के चक्कर में बीसीसीआई इस पर सोच ही नहीं रहा है. हद तो यह कि धोनी पूरी तरह फिट नहीं होते हुए भी खेल रहे हैं, जबकि विश्व कप में चयनकर्ताओं ने बैकअप कीपर नहीं दिया है. इतना ही नहीं, आईपीएल खत्म होते ही टीम को सीधे इंग्लैंड चले जाना है. यानी 37 दिनों तक लगातार खेलने के बाद टीम को आराम करने का भी मौका भी नहीं मिलेगा. विश्व कप की तैयारी के लिए 12 दिन ही मिलेंगे. कहना न होगा कि भारतीय टीम संकट में है और आईपीएल जैसे-जैसे बढ़ता जाएगा, टीम का संकट वैसे-वैसे गहराता जाएगा. चूंकि दांव पर करोड़ों रुपए लगे हैं, इसलिए सबकुछ समझते हुए भी बीसीसीआई चुप है. क्रिकेटर ही नहीं, बोर्ड के अधिकारी भी चाहते हैं कि आईपीएल में अधिक से अधिक स्टार क्रिकेटर खेलें. दूसरी ओर, आस्ट्रेलिया को देखें. उसने समझदारी दिखाते हुए अपने खिलाड़ियों को आईपीएल-2 से दूर ही रखा. इसलिए कि कंगारू सितंबर 2008 से लगातार खेल रहे हैं और दौरों के बीच में उन्हें आराम करने के लिए अधिक समय नहीं मिल पा रहा. ऐसे में आस्ट्रेलियाई अगर आईपीएल खेलते तो ट्वेंटी-20 विश्व कप की तैयारी को झटका लगता. माइकल हसी, साइमंड्स और ब्रेट ली ने आईपीएल-2 में खेलना शुरू किया, जब वह आधे से अधिक निकल गया है. वैसे भी विश्व कप की अन्य टीमों की तुलना में भारत की स्थिति दूसरी है. उसे अपने खिताब की रक्षा करना है. ऐसे में अगर सहवाग, ज़हीर जल्द स्वस्थ नहीं हुए और धोनी व युवराज की चोट गंभीर हुई तो विश्व कप में भारतीय प्रदर्शन का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है.

चोट की गंभीरता देखिए कि विस्फोटक बल्लेबाज वीरेंद्र सहवाग और तेज़ गेंदबाज ज़हीर ख़ान को बीच टूर्नामेंट में ही खेल छोड़कर बैठना पड़ गया है. इतना ही नहीं, युवराज सिंह की अंगुली में चोट लगी हुई है तो कप्तान महेंद्र सिंह धोनी कमर दर्द से परेशान हैं. लेकिन आईपीएल से कमाई के चक्कर में बीसीसीआई इस पर सोच ही नहीं रहा.

आनंद को शतरंज का एक और ऑस्कर

शतरंज की विश्व चैंपियनशिप पर कब्ज़ा जमाने वाले विश्वनाथन आनंद फिर सुर्खियों में हैं. ग्रैंड मास्टर विश्वनाथन आनंद को फिर से शतरंज के प्रतिष्ठित ऑस्कर पुरस्कार से नवाज़ा गया है. यह आनंद का छठा ऑस्कर है और तीसरी बार उन्हें यह पुरस्कार लगातार दो सालों में दिया जा रहा है. अजरबैजान की राजधानी बाकू में आयोजित एक कार्यक्रम में आनंद को यह सम्मान दिया गया. आनंद बाकू में अजरबैजान और शेष विश्व के बीच होने वाले प्रेसीडेंट कप में हिस्सा ले रहे थे. फिडे के अध्यक्ष किरसन इल्युम्झिनोव ने आनंद को चेस ऑस्कर का पुरस्कार दिया. इस ऑस्कर के साथ ही आनंद वह पहले ग़ैर-रूसी खिलाड़ी बन गए हैं जिसने चेस ऑस्कर पांच से अधिक बार हासिल किया हो. वह इससे पहले 1997, 1998, 2003, 2004, 2007 में यह खिताब अपने नाम कर चुके हैं. महान अमेरिकी शतरंज खिलाड़ी बॉबी फिशर ने यह ऑस्कर तीन बार जीता था, जबकि रूसी खिलाड़ी गैरी कास्परोव इसे 11 बार जीत चुके हैं. यह ऑस्कर वर्ष के सर्वश्रेष्ठ शतरंज खिलाड़ी को दिया जाता है. रूसी शतरंज पत्रिका *64-चेस रिव्यू* शतरंज के खिलाड़ियों और पत्रकारों के बीच कराए गए एक मतदान के आधार पर साल का ऑस्कर विजेता चुनती है. इस ऑस्कर अवार्ड की मूर्ति की छवि फैसीनेटेड वांडरर यानी एक अचंभित यात्री की इमेज की है. चेस ऑस्कर शतरंज की दुनिया का सबसे प्रतिष्ठित पुरस्कार है.

आनंद को यह पुरस्कार मिलने की घोषणा पिछले साल अक्टूबर में ही हो गई थी. आनंद ने पिछले साल बॉन में व्लादिमीर क्रेमनिक को हराकर पहली बार एकीकृत शतरंज का विश्व पुरस्कार जीता था. आनंद यूं तो इससे पहले कई बार विश्व चैंपियन बन चुके थे लेकिन यह पहला मौका था जब शतरंज फेडरेशन से टूट कर अलग हुआ हिस्सा इस प्रतियोगिता का हिस्सा था. इस तरह यह सत्र आनंद के लिए बेहतरीन साबित हो रहा है. एक तो वह निर्विवाद चैंपियन बन चुके हैं और अब लगातार चेस ऑस्कर मिल जाने से आनंद के लिए यह सोने पर सुहागा वाली बात हो गई है.

हालांकि हमेशा की तरह इन सम्मानों की चकाचौंध के बीच आनंद अपने लक्ष्य पर केंद्रित नज़र आते हैं. चेस ऑस्कर जीतकर उन्होंने कहा, इस पुरस्कार का मतलब है कि अब उन्हें प्रेसीडेंट कप में और संभल कर खेलना होगा. उनका कहना था कि पुरस्कार मिलना तो खुशी की बात है ही लेकिन सबसे ज़्यादा ज़रूरी है आने वाले खेल पर फोकस करना, क्योंकि यहां प्रतिस्पर्धा बहुत कड़ी है. कहना न होगा कि आनंद की यही बात उन्हें शतरंज का बड़ा खिलाड़ी बनाती है.

भारतीय तीरंदाजों का स्वर्णिम निशाना

क्रिकेट की चकाचौंध में भले ही जनता और मीडिया का ध्यान दूसरे खेलों पर न जाता हो, लेकिन उनकी उपलब्धियां भी कम नहीं होती हैं. मिसाल सामने है. पिछले कुछ दिनों में शतरंज, टेनिस और हॉकी के मैदानों में परचम लहराने के बाद अब तीरंदाजी की दुनिया में भारतीयों ने कमाल कर दिखाया है. भारतीय टीम ने क्रोएशिया में चल रहे तीरंदाजी विश्व कप पर कब्ज़ा जमाया है. भारतीय खिलाड़ियों ने विश्व कप के रिकर्व स्पर्धा की टीम और एकल दोनों वर्गों में जीत दर्ज की. भारतीय तीरंदाज जयंत तालुकदार ने रिकर्व श्रेणी में एकल का स्वर्ण जीतकर विश्व कप भारत की झोली में डाल दिया. जयंत ने एथेंस ओलंपिक के गोल्ड विजेता रहे इटैलियन मारियो गैलिआज़ो को हराकर यह खिताब जीता.

उधर टीम स्पर्धा में भी जयंत तालुकदार, राहुल बनर्जी और मंगल सिंह चंपिया की तिकड़ी ने स्वर्ण जीता. तीरंदाजी विश्व कप की रिकर्व टीम स्पर्धा में भारतीय टीम ने रूसी महासंघ की टीम को 220-218 से पछाड़ कर जीत दर्ज की. जयंत, राहुल और मंगल की तिकड़ी का इस साल यह दूसरा स्वर्ण है. इससे पहले सैंटो डिमेगो में हुए विश्व कप के पहले चरण में भी यह जोड़ी विजेता रही थी. इससे पहले पिछले साल के विश्व कप में अंतालया (तुर्की) में भी भारत की टीम ने ही जीत दर्ज की थी. तीरंदाजी में सर्वश्रेष्ठता साबित कर भारत ने फिर से उस दरवाजे पर दस्तक दे दी है जहां से आगे एक खेल-महाशक्ति के तौर पर पहचान का रास्ता खुलता है.

जयंत तालुकदार

पिछले कुछ समय से क्रिकेट के अलावा अन्य खेलों में भी भारतीय अच्छा करते दिख रहे हैं. वैसे सुल्तान अजलान शाह कप में भारत की जीत और एशिया कप फुटबॉल के लिए क्वालीफाई करने की ख़बरें कहीं दब कर रह गईं. अब बस उम्मीद है कि जिस देश में खेलों के सबसे बड़े पुरस्कारों में से एक का नाम ही तीरंदाज (अर्जुन) के नाम पर हो, वहां तीरंदाजी के इन अर्जुनों को उनकी असली जगह मिल सकेगी. आशा है कि तीरंदाजी संघ के कर्ताधर्ता भी कुछ ऐसा ही सोच रहे होंगे. फिलहाल तो यह इस नई बादशाहत का जश्न मनाने का वक्त है.

क्लब फुटबॉल में बादशाहत की जंग

तारीख़-27 मई. जगह-रोम का स्टेडियो ओलंपिको. दांव पर होगा यूरोपीयन फुटबॉल का ताज और आमने-सामने होंगी इंग्लैंड और स्पेन की सर्वश्रेष्ठ क्लब टीमें. मैनचेस्टर यूनाइटेड और बार्सिलोना इस बार यूएएफा (यूईएफए) चैंपियंस लीग के फाइनल में आमने-सामने होंगी. यहीं यूरोप की सर्वश्रेष्ठ फुटबॉल क्लब टीम का फैसला होगा.

मैनचेस्टर और बार्सिलोना के बीच इस मैच का मतलब बस दो क्लबों की आपसी टक्कर नहीं है. इस मैच में यूरोपीय प्रतिष्ठा दांव पर होगी. यूरोप में सर्वश्रेष्ठ फुटबॉल खेलने वाले देश का खिताब दांव पर होगा. इंग्लैंड की मैनचेस्टर यूनाइटेड वर्तमान यूरोपीय चैंपियन है. पिछले साल हमवतन चेल्सी को हराकर उसने इस खिताब पर कब्ज़ा जमाया था. सांस रोकने वाले एक फाइनल में पेनाल्टी शूटआउट के ज़रिए फैसला हुआ था.

सेमी फाइनल में आर्सेनल पर जीत की खुशी मनाते रोनाल्डो और रूनी

चेल्सी और बार्सिलोना के मैच में कमाल दिखाते लायनल मेसी (बाएं)

दबाव इस कदर था कि दुनिया के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों में शामिल क्रिश्चियानो रोनाल्डो और जॉन टेरी भी पेनाल्टी चूक गए थे. इस बार दबाव और गहरा होगा. बार्सिलोना कई सालों के बाद फाइनल में पहुंचने वाली पहली स्पेनिश टीम है. पिछली बार मैनचेस्टर ने उसे सेमीफाइनल में हराया था. इस बार वह मौका चूकना नहीं चाहेगी. सेमीफाइनल में चेल्सी के ख़िलाफ़ मिली जीत भले ही विवादों में घिरी हुई हो, लोग भले यह कह रहे हों कि यह जीत रेफरी की ग़लती से मिली है लेकिन इतनी तारीफ तो करनी होगी कि अंतिम आधे घंटे में 10 खिलाड़ियों से खेलकर भी बार्सा ने फाइनल में जगह बनाई. असल में इस एक मुकाबले में कई और ऐसे मुकाबले होंगे जिनपर दुनिया भर की नज़रें रहेंगी. दुनिया के दो सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों क्रिश्चियानो रोनाल्डो और लायनल मेसी के बीच का संघर्ष देखने का इंतजार हर फुटबॉल प्रेमी को रहेगा. पिछली बार सेमीफाइनल में मुक़ाबला बराबरी पर छूटा था. उधर, वेन रूनी और थियरे हेनरी अपनी स्ट्राइकिंग पावर का जलवा बिखेरते नज़र आएंगे. ग़ौरतलब है कि मैनचेस्टर यूनाइटेड ने आर्सेनल को हरा कर फाइनल में प्रवेश किया है.

बहरहाल, यहां मुकाबला दो देशों के बीच भी होगा, जहां मैनचेस्टर इंग्लैंड की बादशाहत कायम रखने को खेलेगी वहीं बार्सिलोना फिर से यूरोपियन फुटबॉल में स्पेनिश बादशाहत का झंडा गाड़ना चाहेगी. 18 साल पहले मैनचेस्टर ने ही बार्सिलोना को हराकर यूरोपियन फुटबॉल में इंग्लिश क्लबों की वापसी कराई थी. अब बार्सिलोना इतिहास को पलटना चाहेगी. दोनों टीमें बेहतरीन फार्म में भी हैं.

बार्सिलोना और मैनचेस्टर यूनाइटेड अपने-अपने देशों की लीग क्रमशः सेरी ए (स्पेनिश लीग) और ईपीएल (इंग्लिश प्रीमीयर लीग) में सबसे ऊपर चल रही हैं. पिछले कुछ सालों से चैंपियंस लीग पर इंग्लिश और इटैलियन क्लबों का कब्ज़ा रहा था. अब देखना है कि बार्सिलोना इस दबदबे को तोड़ पाती है या नहीं, या लीग वापस ओल्ड ट्रैफर्ड (मैनचेस्टर) लौट जाएगी.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com

काम आने लगा काम

सोनिका अग्रवाल

एक समय था, जब नई अभिनेत्रियों के काम की कम और उनकी दूसरी तरह की कहानियों की अधिक चर्चा हुआ करती थी. लेकिन नए दौर में सिर्फ कहानियों का ट्रीटमेंट ही नहीं बदला है, बल्कि कलाकारों के प्रति फिल्मवालों का नज़रिया भी काफी बदल गया है. आज जहां लड़के सिर्फ चॉकलेटी ही नहीं चाहिए, तो लड़कियां भी सिर्फ सेक्स सिंबल नहीं रह गईं. आज हॉलीवुड से मुक़ाबला कर रहे बॉलीवुड में दमदार कहानियों पर जोर रहने लगा है, इसलिए दम होने पर नए चेहरों को भी खूब मौके दिए जा रहे हैं. कोंकणा इसकी सबसे बेहतर मिसाल हैं. सिर्फ और सिर्फ दमदार अभिनय के बल पर वह सभी प्रयोगशील निर्देशकों की पहली पसंद बन गई हैं. छोटे-से शहर से आईं नीतू चंद्रा भी अपने काम के बल पर ही ख़ूबसूरत ईशा देओल से कोई कम चर्चा में नहीं रहतीं. उधर, बड़े बैनरों और फिल्मी घरानों से जुड़ीं दीपिका पादुकोण व सोनम कपूर तक को कड़ी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है. फिल्म *गजनी* के बाद आसिन के पास बड़े बैनरों की फिल्मों की लाइन लग गई है. सलमान ख़ान तक उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते. यही हाल शाहरुख़ के साथ फिल्म-*रब ने बना दी जोड़ी*-करने वाली अनुष्का का है. यह नए चेहरों के काम का कद्र ही है कि *फैशन* में मुख्य भूमिका न करते हुए भी कंगना राणावत और मुग्धा के करियर ने लंबी छलांग लगा ली है. फिल्म *रॉक ऑन* के लिए जब प्रतिभाशाली अभिनेत्री की तलाश की गई थी तो नज़र सीरियलों में काम कर रहीं प्राची पर टिकी थी. इसी तरह लड़कों में देखें तो हृतिक रोशन जैसे दिखने और डांस करने वाले हरमन बवेजा को लोग प्रियंका चोपड़ा के पूर्व प्रेमी से अधिक का भाव देने को तैयार नहीं हैं, लेकिन सामान्य से लुक वाले अभय देओल बेहतरीन अभिनेताओं में शुमार किए जाने लगे हैं. बॉलीवुड में वक्त किस तरह बदला है, इसे चित्रांगदा के जरिए समझा जा सकता है. चित्रांगदा ने 2003 में एक फिल्म की थी-*हज़ारों ख्वाहिशें ऐसी*. इसमें अच्छे अभिनय के बावजूद उन्हें तब कोई ख़ास फिल्म नहीं मिली. लेकिन प्रतिभा के कद्रदानों वाले इस दौर में उनका फिर स्वागत हुआ है. *सॉरी भाई* फिल्म से उन्होंने दोबारा इंट्री ली है.

वैसे फिल्मी दुनिया की चकाचौंध से प्रभावित होकर यहां आने वालों की संख्या भी कम नहीं है. जिस तरह सुचित्रा सेन की बेटी मुनमुन सेन सिर्फ ग्लैमर की ख़ातिर आ गई थीं, उसी तरह उनकी दोनों बेटियां भी यहां घूम-फिर रही हैं. कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि वह ज़माना गया, जब बिंदास अभिनेत्रियों का इस्तेमाल फिल्म में सिर्फ ग्लैमर दिखाने के लिए होता था. आज चूंकि ग्लैमर बड़े पर्दे से उतर कर सीधे घरों में पहुंच गया है, इसलिए दर्शकों के सिर चढ़कर उनका ही जादू बोल रहा है, जिनके काम में भी है दम.

sonika.chauthiduniya@gmail.com

थोड़ा-सा तो साथ निभा दे

पाकिस्तानी गायक अदनान सामी को आजकल समझ में नहीं आ रहा कि वह खुश होएं या दुखी. दुखी इसलिए कि पत्नी सबा ने उनके ख़िलाफ़ न सिर्फ तलाक की अर्ज़ी दे रखी है, बल्कि मारपीट से लेकर कई अन्य तरह के संगीन आरोपों में पुलिस में एफआईआर भी दर्ज करा रखी है. लेकिन इन ख़बरों के बीच जिस तरह से बॉलीवुड के बड़े-बड़े नामों ने उनसे संपर्क बढ़ाया है, वह हैरान करता है. जानकार इसका मतलब यही निकाल रहे हैं कि बॉलीवुड इस पूरे मामले में अदनान के साथ खड़ा होने का संकेत दे रहा है. यही कारण है कि मुंबई स्थित कोकिलाबेन धीरूभाई अंबानी अस्पताल में इलाज़ करा रहे अदनान के पिता का हालचाल जानने के लिए पिछले दिनों तमाम बड़ी-बड़ी हस्तियां पहुंचीं. इनमें अमिताभ बच्चन से लेकर शाहरुख़ ख़ान तक शामिल हैं. ग़ौरतलब है कि पाकिस्तान के पूर्व राजनयिक और अदनान के पिता अरशद सामी कैंसर से पीड़ित हैं. उनका हालचाल जानने के लिए दिलीप कुमार, शायरा बानो और राजेश खन्ना ने भी फोन किया. कहते हैं कि दिलीप कुमार और अदनान के परिवार आपस में रिश्तेदार हैं. बॉलीवुड के इस रुख़ से न सिर्फ अदनान, बल्कि उनके पिता भी काफी खुश हैं. यह दूसरी बात है कि जब बिग-बी और किंग ख़ान अस्पताल पहुंचे, तब ख़ुद अदनान फोटो खिंचाने के लिए वहां नहीं थे. बहरहाल, उनके शुभचिंतकों की नज़र उनके पिता को देखने आने वाले सितारों पर कम, कानूनी कार्रवाइयों पर अधिक लगी हुई हैं. इसलिए कि सबा इस बार अदनान से हर हाल में पिंड छुड़ा लेना चाहती हैं. इस चक्कर में दोनों के बीच जारी आरोप-प्रत्यारोपों का बहुत घटिया स्तर पर पहुंच गया है. सबा ने इस मामले में पिछले दिनों फिल्म अभिनेत्री पूजा बेदी तक को घसीट लिया था, जिसके बाद कहानी कुछ और ही रंग लेने लगी थी.

हड़ताल से छोटे निर्माताओं की शामत

बड़ों की लड़ाई में छोटे निर्माताओं की शामत आई हुई है. मल्टीप्लेक्स मालिकों और फिल्म निर्माताओं के बीच तनातनी लंबी खिंचने से सभी फिल्मों की रिलीज़ अटक गई है. इसका खामियाजा उन छोटे निर्माताओं को अधिक भुगतना पड़ रहा है, जिन्होंने कर्ज़ लेकर फिल्म बनाई है. बात अभी भी इसलिए नहीं बन पा रही कि निर्माता और मल्टीप्लेक्स मालिक अपनी-अपनी पुरानी जिद पर अभी भी अड़े हुए हैं. लाभांश को लेकर उनमें कोई बात नहीं बन रही. इससे तंग आकर निर्माता और वितरक अब छोटे सिनेमाघरों में ही फिल्म रिलीज़ करने की योजना बना रहे हैं. उम्मीद है कि इस नई योजना के मुताबिक मई के अंत में या जून के पहले सप्ताह से फिल्मों का प्रदर्शन शुरू हो जाएगा. तब तक चुनाव का चकल्लस भी ख़त्म हो जाएगा और आईपीएल का बुख़ार भी उतर जाएगा. लेकिन जून में ही ट्वेंटी-20 का विश्व कप होने से फिल्मों को ख़ास फायदा होगा, ऐसा लगता नहीं.

दूसरे, यह भी नहीं लगता कि पुराने अंदाज़ वाले जिन सिनेमाहॉलों में दर्शकों ने जाना काफी पहले छोड़ दिया है, क्या फिर उस पर मेहरबान होंगे? वैसे यह फैसला छोटे निर्माताओं के लिए तो ठीक है, लेकिन बड़े निर्माता मल्टीप्लेक्सों में फिल्मों को रिलीज़ न करने के फैसले से खुश नहीं होंगे. इसकी अपनी वजहें हैं. छोटे निर्माता जहां अपनी फिल्में आमतौर पर गांवों और कस्बों को ध्यान में रख कर बनाते हैं, वहीं बड़े निर्माताओं को पिछले कुछ सालों से मल्टीप्लेक्सों को ही ध्यान में रखकर फिल्में बनाने की आदत पड़ गई है. बहरहाल, यह बॉलीवुड है. यहां अंत में कोई न कोई समझौता हो ही जाता है. इसलिए कोई अचरज नहीं कि दोनों पक्ष सिंगल स्क्रीन वाले सिनेमाहॉलों के साथ-साथ मल्टीप्लेक्सों में भी फिल्मों के रिलीज़ होने का कोई न कोई रास्ता निकाल ही लें. अगर कोई रास्ता निकल आया तो दर्शकों के आगे फिल्मों की लाइन लग जाने वाली है. अक्षय कुमार, शाहरुख़ ख़ान, आमिर ख़ान, हृतिक रोशन, सलमान, अभिषेक बच्चन, अजय देवगन, जॉन अब्राहम, शाहिद कपूर जैसे सितारों की लगभग चार दर्ज़न फिल्में अगले छह महीने में देखने को मिलेंगीं. इनके अलावा कई छोटे-बड़े सितारों की भी दो दर्ज़न फिल्में लाइन में हैं. यानी हड़ताल ख़त्म होने के बाद छोटी-बड़ी फिल्में मिलाकर हर सप्ताह पांच से सात फिल्में देखने को मिलेंगीं.

राखी का दर्द

राखी सावंत कुछ भी करें, चर्चा में रहती ही हैं. चर्चा के बिना रहना उनके लिए उतना ही मुश्किल है, जितना किसी के लिए ऑक्सीजन के बिना रहना. वह अपने ऐसे बेबाक बयानों के लिए जानी जाती हैं, जिन्हें लोग मज़ाक में लेते हैं और ऐसे कामों के लिए मशहूर हैं जिन्हें दूसरी अभिनेत्रियां करने में परहेज करती हैं. आइटम गर्ल, बड़बोली राखी कुछ भी कर गुजरने के लिए हमेशा तैयार रहती हैं. ग़ौरतलब है कि राखी अब छोटे पर्दे पर *स्वयंवर* के जरिए अपना पति ढूंढ़ने वाली हैं. *एनडीटीवी इमैजिन* पर *स्वयंवर* नाम से राखी का रियलिटी शो जल्द ही शुरू होने वाला है. लेकिन इसके लिए जो आवेदन आ रहे हैं, उनसे राखी दुखी बताई जा रही हैं. राखी सोचती थीं कि उनके लिए प्रपोजल लेकर आने वालों में कुछ नामी हस्तियां भी होंगी, लेकिन अभी तक ऐसा कुछ दिख नहीं रहा. कोई उतना भी मशहूर नहीं है, जितना उनका पूर्व प्रेमी अभिषेक अवस्थी थे. वैसे राखी को स्वयंवर रचाने की प्रेरणा मनीष गोस्वामी के सीरियल *दहलीज़* से मिली. इस सीरियल की लीड एक्ट्रेस प्रीति गंधवानी के चरित्र से राखी बहुत प्रभावित हुईं. उसे देखने के बाद लगा कि अब वह समय आ गया है कि अपना जीवन साथी तलाश लिया जाए. राखी के *स्वयंवर* में भाग लेने के लिए उन अब तक 14000 पुरुषों के आवेदन आ चुके हैं. आवेदकों में व्यवसायी से लेकर डॉक्टर, मॉडल, इंजीनियर और एनआरआई तक शामिल हैं. इनमें उम्रदराज लोगों की संख्या भी कम नहीं है. सभी आवेदन प्राप्त होने के बाद राखी 15 पुरुषों को चुनेंगी, जो कार्यक्रम के अंत तक रहेंगे. उन 15 में से ही राखी का स्वयंवर होगा. राखी सचमुच शादी करेंगी या यह पब्लिसिटी स्टंट है, इसे अभी तक राज़ ही रखा गया है. चैनल के मुताबिक आवेदनों में दो हज़ार 465 प्रपोज़ल केवल नई दिल्ली से आए हैं. इनके अलावा एक हज़ार 980 प्रपोज़ल भेजने वालों की उम्र 18 से 35 साल के बीच है. वैसे इस तरह के लोग भी काफी मिल रहे हैं, जिनकी शिकायत है कि उनका आवेदन लाख चाहने के बाद भी पहुंच नहीं पा रहा है. दूसरी तरफ, राखी सावंत के कुछ ऐसे प्रशंसक भी हैं, जिन्हें अभी तक यह नहीं मालूम कि आवेदन करना कैसे है. यानी राखी को स्वयंवर की पब्लिसिटी पर कुछ और ध्यान देना चाहिए.

दीपिका और सैफ भी दिखेंगे क्रिकेट के मैदान में

सुपरहिट फिल्म *ओम शांति ओम* से अपने करियर की शुरुआत करने वाली दीपिका पादुकोण जल्द ही क्रिकेट के मैदान में नज़र आने वाली हैं. साथ में होंगे सैफ. दोनों अगले महीने इंग्लैंड में होने वाले ट्वेंटी-20 विश्व कप में दिखेंगे. वे वहां *जब वी मेट* जैसी ख़ूबसूरत फिल्म बनाने वाले इम्तियाज अली की अगली फिल्म-*लव स्टोरी*-का प्रचार करने जाएंगे. इसके लिए दोनों मैदान में बाकायदा बल्ले लेकर जाएंगे और कुछ शॉट भी लगाएंगे. यही कारण है कि दीपिका आजकल अभिनय से ज़्यादा क्रिकेट की बारीकियां सीखने में ध्यान लगा रही हैं. इतना ही नहीं, वह गेस्ट कमेंटेटर के रूप में कुछ मैचों का विश्लेषण भी करेंगी. वैसे तो दीपिका का क्रिकेट से इतना ही नाता रहा है कि युवराज को जहां उन्होंने अपनी खूबसूरती से बोल्ड किया, वहीं धोनी को स्टंप्ड करके उन्हें रणबीर कपूर ले उड़े. बहरहाल, लंदन में एक विशेष सैलिब्रिटी मैच भी खेला जाएगा . एक टीम में दीपिका और दूसरे में सैफ होंगे. इन टीमों में पत्रकारों को भी शामिल किया जाएगा. इन टीमों का नाम होगा *कल और आज*. *कल* में सीनियर लोग नज़र आएंगे तो *आज* में युवा.

हास्य प्रेमी सोहा

अपनी गंभीर अदायगी के कारण अलग पहचानी जाने वाली सोहा अली ख़ान इन दिनों शाइनी आहूजा के साथ एक नई फिल्म की गुपचुप शूटिंग में व्यस्त हैं. गुपचुप इसलिए कि यह फिल्म थ्रिलर है और निर्माता नहीं चाहते कि फिल्म की कहानी का राज़ दर्शकों को पहले ही मालूम हो जाए. कहते हैं कि सोहा इन दिनों अपनी छवि बदलने के बारे में गंभीरता से सोच रही हैं. रोने-धोने वाली गंभीर अभिनेत्री के रूप में अपनी पहचान से वह संतुष्ट नहीं हैं. वह कहती भी हैं कि मैंने आज तक ज़्यादातर फिल्में रोने वाली की है, जिनमें सभी रोते हुए दिखाई देते हैं. मेरी अधिकतर फिल्मों में मंगेतर की मौत ही होती रहती है. इसलिए अब उन्होंने हास्य भूमिकाओं की ओर रुख़ किया है. उनकी कुछ पहले आई फिल्म-*दिल कबड्डी*-कॉमेडी थी और हाल में रिलीज़ हुई *ढूंढ़ते रह जाओगे* भी हास्य से भरपूर ही थी. वह मानती हैं कि दर्शकों को रुलाना आसान है, लेकिन हंसाना बहुत मुश्किल. उम्मीद की जानी चाहिए कि सोहा का हास्य से भरपूर यह सुहाना अंदाज दर्शकों को खूब भाएगा और वह अपने गंभीर इमेज को तोड़ने में सफल भी हो जाएंगीं.

सोहा इन दिनों अपनी छवि बदलने के बारे में गंभीरता से सोच रही है. रोने-धोने वाली गंभीर अभिनेत्री के रूप में अपनी पहचान से वह संतुष्ट नहीं है. वह कहती भी है कि मैंने आज तक ज्यादातर फिल्में रोने वाली की है जिनमें सभी रोते हुए दिखाई देते है.

कृपया अपने सबस्क्रिप्शन चेक अंकुश पब्लिकेशंस प्राइवेट लिमिटेड के नाम पर इस पते पर भेजें :- (गैनन) के-2, दूसरी मंज़िल, चौधरी बिल्डिंग, मिडिल सर्किल, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली -110001

शुल्क
6 महीने -450 रु.
12 महीने - 800 रु.

चौथी दुनिया ब्यूरो

feedback.chauthiduniya@gmail.com